पृथ्वी का भूगर्भिक इतिहास

उल्का पिंडों एवं चन्द्रमा के चट्टानों के नमूनों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि हमारी पृथ्वी की आयु **4.6 अरब वर्ष** है। पृथ्वी पर सबसे प्राचीन पत्थर नमूनों के रेडियोधर्मी तत्वों के परीक्षण से उसके 3.9 बिलियन वर्ष पुराना होने का पता चला है। रेडियोसक्रिय पदार्थों के अध्ययन के द्वारा पृथ्वी की आयु की सबसे विश्वसनीय व्याख्या हो सकी है। पियरे क्यूरी एवं रदरफोर्ड ने इनके आधार पर पृथ्वी की आयु दो से तीन अरब वर्ष अनुमानित की है। पृथ्वी के भूगर्भिक इतिहास की व्याख्या का सर्वप्रथम प्रयास फ्रांसीसी वैज्ञानिक **कास्ते-द-बफन** ने किया। वर्तमान समय में पृथ्वी के इतिहास को कई कल्प (Era) में विभाजित किया गया है। ये कल्प पुनः क्रमिक रूप से युगों (Epoch) में व्यवस्थित किए गए हैं। प्रत्येक युग पुनः छोटे उपविभागों में विभक्त किया गया है जिन्हें 'शक' (Period) कहा जाता है। प्रत्येक शक की कालावधि निर्धारित की गई है एवं जीवों तथा वनस्पतियों के विकास पर भी प्रकाश डाला गया है।

	कल्प (Era)	युग (Epoch)	शक (Period)	प्रारम्भ (वर्ष पूर्व)	समाप्ति (वर्ष पूर्व)	कुल अवधि (वर्ष)
1.	प्रीपैल्योजोइक	–	(1) आर्कियन या एजोइक	अत्यन्त प्राचीन काल	अत्यन्त प्रचीन काल	–
		–	(2) प्रीकैम्ब्रियन या एलगानिकन	–	–	–
2	पैल्योजोइक	प्रथम युग	(1) कैम्ब्रियन	600 मिलियन काल	500 मिलियन	100 मिलियन
			(2) आर्डोविसियन	500 मिलियन	440 मिलियन	60 मिलियन
			(3) सिल्यूरियन	440 मिलियन	400 मिलियन	40 मिलियन
			(4) डिवोनियन	400 मिलियन	350 मिलियन	50 मिलियन
			(5) कार्बोनीफेरस	350 मिलियन	270 मिलियन	80 मिलियन
			(6) पर्मियन	270 मिलियन	225 मिलियन	45 मिलियन
3	मेसोजोइक	द्वितीयक युग	(1) ट्रियासिक	225 मिलियन	180 मिलियन	45 मिलियन
			(2) जुरैसिक	180 मिलियन	135 मिलियन	45 मिलियन
			(3) क्रिटैशियस	135 मिलियन	70 मिलियन	65 मिलियन
4	सेनोजोइक	तृतीयक युग	(1) पैलियोसीन	70 मिलियन	60 मिलियन	10 मिलियन
			(2) इयोसीन	60 मिलियन	40 मिलियन	20 मिलियन
			(3) ओलिगोसीन	40 मिलियन	25 मिलियन	15 मिलियन
			(4) मायोसीन	25 मिलियन	11 मिलियन	14 मिलियन
			(5) प्लायोसीन	11 मिलियन	1 मिलियन	10 मिलियन
5	नियोजोइक	चतुर्थक युग	(1) प्लीस्टोसीन	1 मिलियन	10 हजार	9 लाख 90 हजार
			(2) होलोसीन	10 हजार	10 हजार	–

पृथ्वी के भूगर्भिक इतिहास से संबंधित प्रमुख तथ्य

1. **आद्य कल्प (pre-palaeozoic Era)** : इसे आर्कियन व प्री-कैम्ब्रियन दो भागों में बांटा गया है।

(i) **आर्कियन** काल के शैलों में जीवाश्मों का पूर्णतः अभाव है। इसलिए इसे प्राग्जैविक (Azoic) काल भी कहते है। इन चट्टानों में ग्रेनाइट तथा नीस की प्रधानता है, जिनमें सोना तथा लोहा पाया जाता है। इसी काल में कनाडियन व फेनोस्कैंडिया शील्ड निर्मित हुए हैं।

(ii) **प्री-कैम्ब्रियन** काल में रीढ़विहीन जीव का प्रादुर्भाव हो गया था। इस काल में गर्म सागरों में मुख्यतः नर्म त्वचा वाले रीढ़विहीन जीव थे। यद्यपि समुद्रों में रीढ़युक्त जीवों का भी प्रादुर्भाव हो गया, परंतु स्थलभाग जीवरहित था। भारत में प्री-कैम्ब्रियन काल में ही अरावली पर्वत व धारवाड़ चट्टानों का निर्माण हुआ।

2. **पुराजीवी महाकल्प (Palaeozoic Era)** : इसे प्राथमिक युग भी कहा जाता है। इसके निम्न उपभाग हैं-

(i) **कैम्ब्रियन** काल में प्रथम बार स्थल भागों पर समुद्रों का अतिक्रमण हुआ। प्राचीनतम अवसादी शैलों (Sedimentary Rocks) का निर्माण कैम्ब्रियन काल में ही हुआ था। भारत में विंध्याचल पर्वतमाला का निर्माण इसी काल में हुआ था। पृथ्वी पर इसी काल में सर्वप्रथम वनस्पति तथा जीवों की उत्पत्ति हुई। ये जीव बिना रीढ़ की हड्डी वाले थे। इसी समय समुद्रों में घासों की उत्पत्ति हुई।

(ii) **आर्डोविसियन** काल में सागरीय वनस्पतियों का विस्तार हुआ तथा समुद्र में रेंगने वाले जीव भी उत्पन्न हुए। स्थल भाग अभी भी जीवविहीन था।

(iii) **सिल्यूरियन** काल में ही रीढ़ वाले जीवों का सर्वप्रथम आविर्भाव हुआ एवं समुद्रों में मछलियों की उत्पत्ति हुई। सिल्यूरियन काल में रीढ़ वाले जीवों का विस्तार मिलता है, इसलिए इसे 'रीढ़ वाले जीवों का काल' (Age of Vertebrates) कहते हैं। इस काल में प्रवाल जीवों का विस्तार मिलता है। स्थल पर पहली बार पौधों का उद्भव इसी समय हुआ। ये पौधे पत्ती विहीन थे एवं आस्ट्रेलिया में उत्पन्न हुए थे। यह काल व्यापक कैलिडोनियन पर्वतीय हलचलों का काल भी है। इसी समय स्कैंडिनेविया व स्कॉटलैंड के पर्वतों का निर्माण हुआ।

(iv) **डिवोनियन** काल में पृथ्वी की जलवायु समुद्री जीवों विशेषकर मछलियों के सर्वाधिक अनुकूल थी। इसी समय शार्क मछली का भी आविर्भाव हुआ। अतः इसे 'मत्स्य युग' (Fish Age) के रूप में जाना जाता है। उभयचर जीवों (Amphibians) की भी उत्पत्ति हुई। फर्न वनस्पतियों की भी उत्पत्ति हुई। पौधों की ऊंचाई 40 फीट ऊंची पहुंच गयी थी। इस समय कैलिडोनियन पर्वतीकरण भी बड़े पैमाने पर हुआ एवं ज्वालामुखी क्रियाएं भी सक्रिय हुई।

(v) **कार्बोनीफेरस** युग में उभयचरों का विकास व विस्तार बढ़ता गया। रेंगने वाले जीव (Raptiles) का भी स्थल पर आविर्भाव हुआ। इस काल में 100 फीट ऊंचे पेड़ भी उत्पन्न हुए। यह 'बड़े वृक्षों (ग्लोसोप्टिरस वनस्पतियों) का काल' कहलाता है। इस समय बने भ्रंशों में पेड़ों के दब जाने से गोंडवाना क्रम के चट्टानों का निर्माण हुआ जिसमें कोयले के व्यापक निक्षेप मिलते हैं।

(vi) **पर्मियन** युग में हर्सीनियन पर्वतीकरण का काल है। इस समय भ्रंशों के निर्माण के कारण ब्लैक फॉरेस्ट व वास्जेज जैसे भ्रंशोत्थ पर्वतों का निर्माण हुआ। स्पेनिश मेसेटा, अल्ताई, तिएनशान, अप्लेशियन जैसे पर्वत भी इसी काल में निर्मित हुए। इस समय स्थल पर जीवों व वनस्पतियों की अनेक प्रजातियों का विकास देखा गया। भ्रंशन के कारण उत्पन्न आंतरिक झीलों के वाष्पीकरण से पृथ्वी पर पोटाश भंडारों का निर्माण हुआ।

3. **मध्यजीवी महाकल्प (Mesozoic Era)**: इसे द्वितीयक युग भी कहा जाता है। इसे ट्रियासिक, जुरैसिक व क्रिटेशियस कालों में बांटा गया है।

(i) **ट्रियासिक** काल में स्थल पर बड़े-बड़े रेंगने वाले जीव का विकास हुआ। इसीलिए इसे 'रेंगने वाले जीवों का काल' (Age of Raptiles) कहा जाता है। यह काल आर्कियोप्टेरिक्स की उत्पत्ति का काल था। ये स्थल एवं आकाश दोनों में चल सकते थे। इस समय तीव्र गति से तैरने वाले लॉबस्टर (केकड़ा समूह का प्राणी) का उद्भव भी हुआ। स्तनधारी भी उत्पन्न होने लगे थे। मांसाहारी मत्स्यतुल्य रेप्टाइल्स सागरों में उत्पन्न हुए। रेप्टाइल्स में भी स्तनधारियों की उत्पत्ति हो गयी।

(ii) **जुरैसिक** काल में मगरमच्छ के समान मुख और मछली के समान धड़ वाले जीव, डायनासोर रेप्टाइल्स का विस्तार हुआ एवं लॉबस्टर प्राणी बढ़ते चले गये। जलचर, स्थलचर व नभचर तीनों का आविर्भाव हो गया। जूरा पर्वत का संबंध इसी काल से जोड़ा जाता है। पुष्पयुक्त वनस्पतियां इसी काल में आई थीं।

(iii) **क्रिटेशियस** काल में एंजियोस्पर्म (आवृत्तबीजी) पौधों का विकास प्रारंभ हुआ। बड़े-बड़े कछुओं का उद्भव भी इस काल में देखा गया। मैग्नेलिया व पोपनार जैसे शीतोष्ण पतझड़ वन के वृक्ष विकसित हुए। उत्तरी-पश्चिमी अलास्का, कनाडा, मैक्सिको, ब्रिटेन के डोबर क्षेत्र व आस्ट्रेलिया आदि में खड़िया मिट्टी का जमाव हुआ। पर्वतीकरण अत्यधिक सक्रिय था। रॉकी व एंडीज की उत्पत्ति आरंभ हो गयी। भारत के पठारी भाग में क्रिटेशियस काल में ही ज्वालामुखी लावा का दरारी उद्भेदन हुआ जिससे 'दक्कन ट्रैप' व काली मिट्टी का निर्माण हुआ है।

4. **नवजीवी महाकल्प (Cenozoic Era) :** इस कल्प को तृतीयक या टर्शियरी युग भी कहा जाता है। इसे पैल्योसीन, इओसीन, ओलीगोसीन, मायोसीन व प्लायोसीन कालों में बांटा गया है। इसी कल्प के विभिन्न कालों में अल्पाइन पर्वतीकरण हुए एवं विश्व के सभी नवीन मोड़दार पर्वतों आल्प्स, हिमालय, रॉकी, एंडीज आदि की उत्पत्ति हुई।

(i) **पैल्योसीन** काल में अल्पाइन पर्वतीकरण प्रारंभ हो गये थे। एवं स्थल पर स्तनपायियों का विस्तार हो रहा था। इसी कल्प में सर्वप्रथम स्तनपायी (mamalians) जीवों व पुच्छहीन बंदरों (Ape) का आविर्भाव हुआ।

(ii) **इओसीन** काल में स्थल पर रेंगने वाले जीव प्रायः विलुप्त हो गये। प्राचीन बंदर व गिब्बन म्यांमार में उत्पन्न हुए। हाथी, घोड़ा, रेनोसेरस (गैंडा), सूअर के पूर्वजों का आविर्भाव हुआ।

(iii) **ओलीगोसीन** काल में बिल्ली, कुत्ता, भालू आदि की उत्पत्ति हुई। पुच्छहीन बंदर का आविर्भाव हुआ, जिसे मानव का पूर्वज कहा जा सकता है। वृहत् हिमालय की उत्पत्ति का मुख्यकाल यही है।

(iv) **मायोसीन** काल में बड़े आकार के(60 फीट)शार्क मछली, प्रोकानसल (पुच्छहीन बंदर), जल पक्षी (हंस, बत्तख) पेंग्विन इसी काल में उत्पन्न हुए। हाथी का भी विकास इसी काल में हुआ। मध्य या लघु हिमालय की उत्पत्ति का मुख्य काल यही है।

(v) **प्लायोसीन** काल में बड़े स्तनपायी प्राणियों की संख्या में ह्रास हो गया। शार्क का विनाश हो गया, मानव के पूर्वज का विकास हुआ एवं आधुनिक स्तनपायियों का आविर्भाव हुआ। शिवालिक की उत्पत्ति इसी काल में हुई। हिमालय पर्वतमाला तथा दक्षिण के प्रायद्वीपीय भाग के बीच स्थित जलपूर्ण द्रोणी टेथिस भू-सन्नति में अवसादों के जमाव से उत्तरी विशाल मैदान का आविर्भाव इसी काल में होने लगा था।

5. **नूतन महाकल्प (Neozoic Era) :** इसे चतुर्थक युग भी कहा जाता है। प्लीस्टोसीन व होलोसीन इसके दो उपभाग हैं-

(i) **प्लीस्टोसीन काल** में यूरोप में चार हिमयुग देखे गए। ये थे- गुंज(Gunz), मिन्डेल(Mindel), रिस (Riss) तथा वुर्म (Wurm)। विभिन्न हिमकालों के बीच में अंतर्हिम काल (Inter glacial age)देखे गए जो तुलनात्मक रूप से उष्णकाल था। मिन्डेल व रिस के बीच का अंतर्हिम काल सर्वाधिक लम्बी अवधि का था। उत्तरी अमेरिका में इस समय नेब्रास्कन, कन्सान, इलीनोइन या आयोवा व विंस्कासिन हिमकाल देखे गए। नेब्रास्कन व कन्सान के बीच अफ्टोनियन, कन्सान व इलीनोइन के बीच यारमाउथ, इलीनोइन व विंस्कासिन के बीच संगमन अंतर्हिम काल था। इस युग के अंत में हिम चादर पिघलते चले गये एवं स्कैंडिनेवियन क्षेत्र की ऊंचाई में निरंतर वृद्धि हुई। पृथ्वी पर उड़ने वाले 'पक्षियों का आविर्भाव' प्लीस्टोसीन काल में ही माना जाता है। मानव तथा अन्य स्तनपायी जीव वर्तमान स्वरूप में इसी काल में विकसित हुए।

(ii) **होलोसीन** या अभिनव काल में तापमान वृद्धि के कारण प्लीस्टोसीन काल के हिम की समाप्ति हो गयी तथा विश्व की वर्तमान दशा प्राप्त हुई जो अभी भी जारी है। इसी समय सागरीय जीव वर्तमान अवस्था को प्राप्त हुए। स्थल पर मनुष्य ने कृषि कार्य तथा पशुपालन प्रारंभ कर दिया।

ढाल Slope

ढाल स्थलरूप के प्रमुख अंग हैं जो पहाड़ी तथा घाटी के मध्य उपरिमुखी तथा अधोमुखी झुकाव होते हैं। इनका आकार अवतल Concave, उत्तल Convex, सरलरेखी Rectilinear, मुक्तपृष्ठ Freeface या तीव्र ढालनुमा हो सकता है।

तत्व– उत्तलता, अवतलता, मुक्त पृष्ठता व सरल रेखात्मकता।

वर्गीकरण– (I) उत्पत्ति के आधार पर (अ) विवर्तनिक ढाल (Tectonic) – भूगर्भिक हलचल के कारण धरातल में भ्रंशन व नमन से निर्मित ढाल – जैसे- कगार ढाल.

(ब) अपरदनात्मक ढाल (Erosional) – नदी अपरदन द्वारा गार्ज, कैनियन, हिम अपरदन द्वारा U आकार की घाटी, सागर अपरदन द्वारा क्लिफ।

(स) संचयनात्मक Accumulation :– नदी निक्षेपण द्वारा जलोढ़ पंख तथा जलोढ़ शंकु, वायु द्वारा निक्षेपित बालुका स्तूप, हिमानी निक्षेप द्वारा हिमोढ़, ज्वालामुखी निस्सृत लावा निक्षेप द्वारा शंकु।

(II) निर्माण की अवस्था के आधार पर – (अ) प्राथमिक – विवर्तनिक घटनाएं व अपरदन द्वारा निर्मित ढाल। जैसे V, U, क्लिफ।

(ब) द्वितीयक ढाल :– प्राथमिक ढालों पर अपक्षय तथा अपरदन द्वारा निर्मित।

(III) तत्वों के आधार पर (अ) उत्तल ढाल – पर्वतीय ढाल के सबसे ऊपर वाले भाग में निर्मित.

(ब) मुक्त पृष्ठ ढाल – दीवाल सदृश्य तीव्र ढाल

(स) सरलरेखी ढाल – मुक्त पृष्ठ तथा अवतल ढाल के मध्य एक सीधी रेखा वाला ढाल होता है जिसे सरल रेखी ढाल कहते हैं।

(द) अवतल ढाल – पर्वतीय ढाल के सबसे निचले भाग में।

(IV) ढाल के कोणों के आधार पर – (अ) चौरस ढाल – 0°-1°

(ब) मंद ढाल – 1°–3° (स) सामान्य मंद ढाल – 3°–8°

(द) तीव्र ढलुवां ढाल – 8°–15° (य) सामान्य तीव्र ढाल – 15°–20°

(र) अतितीव्र ढाल – 30°–90°

ढालों की समस्याएं – अनाच्छादन प्रक्रम, क्रमबद्धता, शैल संरचना व जलवायु व मृदावैज्ञानिक संरचना से उत्पन्न समस्या

उपागम (1) ढाल विकास उपगमन – ढाल के ऐतिहासिक विकास पर बल दिया जाता है।

(2) प्रक्रम रूप उपगमन – विभिन्न प्रकार की चट्टानों वाले विभिन्न जलवायु प्रदेशों में अपक्षय अपरदन आदि द्वारा उत्पन्न ढालों का अध्ययन किया जाता है।

वृहत संचलन (Mass- movement)

अपक्षय से प्राप्त शैल अपशिष्टों के पहाड़ी ढाल के सहारे, सामूहिक रूप से गतिशील होने की प्रक्रिया को वृहत संचलन कहते हैं। इसमें दो क्रियाएं सम्मिलित हैं- (1) चट्टानों से पदार्थों का अलग होना (2) पदार्थों का ढाल के सहारे गतिशील होना।

वर्गीकरण (1) पात Fall:- तीव्र पहाड़ी ढाल से बड़े शिलाखंडों सहित अपक्षयित शैल पदार्थों का त्वरित व तत्काल नीचे गिरना जैसे- शैलपात, मलवापात, भूमिपात।

(2) स्खलन (Slide):- अवपतन, शैलस्खलन, भूस्खलन, मलवा स्खलन

(3) लुढ़कना Topples:- शैल, मलवा व भूमि लुढ़काव।

(4) वाह Flow:- जलयुक्त पदार्थों का नीचे की ओर खिसकना जैसे- शैलवाह, मृदा-वाह, मलवा वाह, भूमि वाह आदि।

(5) सर्पण Creep:- ढालों के सहारे पदार्थों के अतिमंद गति से नीचे की ओर संचलन, जैसे- मृदासर्पण, शैल सर्पण।

(6) भूमिस्खलन Land slides:- अपशिष्ट शैल के स्थानांतरण के सभी प्रकार को मृदा एवं हिम सहित सामूहिक रूप से भूमि स्खलन कहते हैं। इसके फलस्वरूप (अ) क्षतिचिन्ह (Scar)- पदार्थ के स्खलन होने वाले स्थान पर निर्मित गड्ढा, (ब) वेदिकाएं (स) विसर्प का विस्तार, (द) कैनियन का पीछे हटना आदि स्थलाकृतियां बनती हैं।

द्रव्यमान संचलन के कारक- (अ) शीयर शक्ति बढ़ाने वाले कारक-

(I) पार्श्विक आश्रय का समाप्त होना- (1) प्राकृतिक कारक- अपक्षय, अपरदन व भ्रंशन से। (2) मानव जनित कारक- निर्माण कार्यों से।

(II) अधिभार (1) प्राकृतिक- जल, हिम, टालस व वनस्पतिभार। (2) मानव जनित - निर्माण व वजनदार कार्य।

(III) ट्रांजिटरी कारक- भूदाब, भूकम्प, वृक्षलहराना, कम्पन, विस्फोट।

(IV) नीचे स्थित आश्रय की समाप्ति- प्राकृतिक व मानव जनित कारणों से।

(ब) पदार्थों की शीयर शक्ति कम करने वाले कारक-

(1) अपक्षय व अन्य भौतिक रासायनिक अभिक्रियाएं-

(2) जल के कारण परिवर्तन (3) संरचना में परिवर्तन

(4) जैविक कारक - जीव जंतु व जड़ सड़ना।

अपरदन (EROSION)

- अपरदन शब्द लैटिन भाषा के ''Erodere'' शब्द से बना है, जिसका शब्दिक अर्थ है 'कुतरना'।
- अपरदन एक गतिशील क्रिया (Dynamic Process) है। अतएव अपरदन एक ऐसी क्रिया है जो भूपटल से चट्टानी मलवा को अलग करके उन्हें अपने साथ परिवहन द्वारा दूर तक ले जाते हैं।
- **अपरदन के कारक**- (Agents of Erosion) अपरदन में भाग लेने वाली शक्तियों को अपरदन के कारक कहते हैं। ये निम्न हैं-
  i. बहता हुआ जल
  ii. पवन
  iii. हिमानी
  iv. भूमिगत जल
  v. परिहिमानी
  vi. सागरीय लहरें, ज्वारभाटा
- **अपरदन के प्रकार**- (Types of Erosion) अपरदन की क्रिया निम्न रूपों में होती है-
  1. अपघर्षण (Abrasion or Corrasion)
  2. सन्निघर्षण (Attrition)
  3. जलगति क्रिया (Hydrolic Action)
  4. घोलीकरण (Solution)
  5. अपवाहन (उड़ाना) (Deflation)

अपरदन चक्र की संकल्पना (Concept of Cycle of Erosion)

- पृथ्वी की कोई भी स्थलाकृति का निर्माण तथा विकास एक चक्रीय पद्धति से होता है।
- सर्वप्रथम 1785 ई० में स्काटिश भूविज्ञानवेत्ता 'जेम्स हटन' ने भूविज्ञान के क्षेत्र में चक्रीय पद्धति का अवलोकन किया था। इन्होंने पृथ्वी के इतिहास की चक्रीय प्रकृति की संकल्पना की थी।
- जेम्स हटन महोदय ने एकरूपतावाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।
- ''न तो आदि का कोई लक्षण है और न अन्त का कोई भविष्य''- जेम्स हटन।

डेविस का भौगोलिक चक्र (Geographical Cycle of Davis)

- सर्वप्रथम डेविस महोदय ने 1899 में भौगोलिक चक्र की संकल्पना का प्रतिपादन किया।
- डेविस महोदय ने भौगोलिक चक्र की परिभाषा इस प्रकार दी- ''भौगोलिक चक्र समय की वह अवधि है, जिसके अन्तर्गत उत्थित भूखण्ड अपरदन के प्रक्रम द्वारा प्रभावित होकर एक आकृतिविहीन समतल मैदान में बदल जाता है।''
- डेविस ने यह प्रतिपादित किया कि 'स्थलरूप संरचना, प्रक्रम तथा समय का प्रतिफल होता है।' "A lands cape is a function of structure, Process and time."
- इन तीन कारकों (संरचना, प्रक्रम तथा समय या अवस्था) को ''डेविस के त्रिकूट'' (Trio of Davis) के नाम से जाना जाता है।
- इनके सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य स्थलरूपों का जननिक एवं क्रमबद्ध वर्णन करना था।
- डेविस का अपरदन चक्र स्थलखण्ड में उत्थान के साथ प्रारम्भ होता है। उत्थान की अवधि छोटी होती है तथा जब तक उत्थान चलता रहता है, अपरदन प्रारम्भ नहीं होता, परन्तु जैसे ही उत्थान पूर्ण हो जाता है अपरदन प्रारम्भ हो जाता है तथा वह चक्र के अन्त तक चलता रहता है।
- डेविस महोदय ने अपने अपरदन चक्र की तीन अवस्थाएं-युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और जीर्णावस्था बताई है।

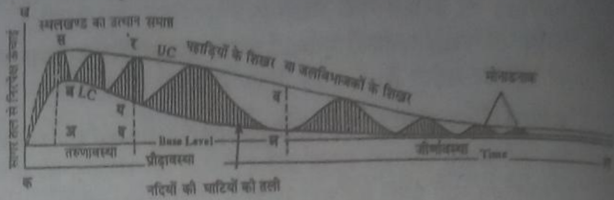

चित्र : डेविस का भौगोलिक चक्र

- इन्होंने अपरदन चक्र की समाप्ति पर बताया कि वह उत्थित भूखण्ड एक आकृतिविहीन समप्राय मैदान जिसे पेनीप्लेन (Peneplain) कहा, में बदल जाता है और जो अवशेष दिखाई पड़ते हैं (पहाड़ी सदृश्य) उन्हें ''मोनाडनाक'' कहा।
- मोनाडनाक का नामकरण संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यूहैम्पशायर की मोनाडनाक पहाड़ी के नाम पर किया गया है।

पेंक की संकल्पना (Penck)

- पेंक का माडल 'मार्फोलॉजिकल सिस्टम' या 'मार्फोलॉजिकल एनालिसिस' के नाम से जाना जाता है।
- इनके माडल का मुख्य उद्देश्य बहिर्जात प्रक्रमों तथा आकृतिक विशेषताओं के आधार पर धरातलीय संचलन (Crustal movement) के विकास एवं उसके कारणों की कल्पना करना था।
- पेंक ने तरूण, प्रौढ़ तथा जीर्ण अवस्थाओं के स्थान पर क्रमशः आफस्तीपिंडे इटिवकलुंग (बढ़ती दर से विकास), ग्लीखफार्मिंग इंटिवकलुंग (समान दर के विकास), एवं आब्सतीजिंडे इंटिवकलुंग (घटती दर के विकास), का प्रयास किया है।
- पेंक के अनुसार ''स्थलरूप संरचना, प्रक्रम तथा अवस्था का प्रतिफल न होकर उत्थान कीदर तथा अपरदन एवं पदार्थों के विस्थापन की दर के बीच अनुपात का प्रतिफल होता है।'' स्थलरूपों के विकास में समय की कोई भूमिका नहीं होती हैं।
- स्थलरूपों का विकास (अपरदन चक्र) प्राइमारम्प में उत्थान के साथ प्रारम्भ होता है। प्राइमारम्प का उत्थान विभिन्न दरों में सम्पन्न होता है।

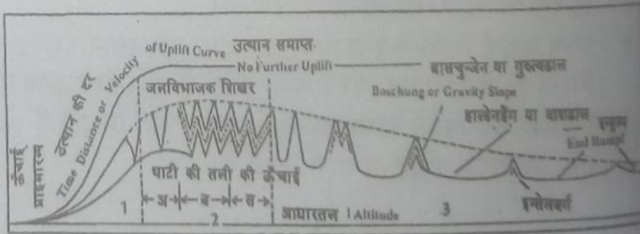

चित्र : पेंक के स्थल रूप विकास मॉडल का आरेखीय प्रदर्शन

- प्रारम्भ में उत्थान मन्द गति से होता है तथा इस उत्थान की अवधि लम्बी होती है। इसके बाद त्वरित गति से तथा बाद में समान दर से उत्थान होता है। अन्त में घटती दर से उत्थान होता है और अन्ततः उत्थान समाप्त हो जाता है।
- इन्होंने प्रथम दशा (उत्थान की शुरुआत) को ''प्राइमारम्प'' और अंतिम दशा को इन्ड्रम्प कहा है। अर्थात् इन्ड्रम्प आकृति विहीन

पर्वत उत्पत्ति के सिद्धांत

1. कोबर का भूसन्नति (Geosyncline) सिद्धांत

जर्मन भूगोलवेत्ता कोबर ने अपनी पुस्तक Der Bau der Erde में 1923 में अपना भूसन्नति सिद्धांत प्रतिपादित किया। कोबर के अनुसार जहाँ पर आज पर्वत हैं वहाँ पर पहले भूसन्नतियां थी जिन्हें उन्होंने पर्वत निर्माण स्थल (Orogen) बताया। इन भूसन्नतियों के चारों ओर प्राचीन दृढ़ भूखण्ड थे जिन्हें उन्होंने (क्रैटोजेन या अग्रदेश) (Fore Land) कहा। इन दृढ़ भूखण्डों के अपरदन से प्राप्त मलवा का नदियों द्वारा भूसन्नति में धीरे-धीरे जमाव होता रहता है। जब भूसन्नति भर जाती है तो पृथ्वी के संकुचन से उत्पन्न क्षैतिज संचलन के कारण भूसन्नति के दोनों अग्रदेश एक दूसरे की ओर खिसकने लगते हैं फलस्वरूप (संपीडनात्मक बल के कारण) भूसन्नति के तलछट में सिकुड़न तथा मोड़ पड़ने लगता है जिस कारण मलवा वलित होकर पर्वत का रूप धारण कर लेता है। भूसन्नति के दोनों किनारों पर दो पर्वत श्रेणियों का निर्माण होता है जिन्हें कोबर ने रेण्डकेटेन (रान्ड केटेन) कहा। जब वलन कम तीव्र होता है तो रेण्टकेटेन के मध्य एक क्षेत्र छूट जाता है जिसे इन्होंने ज्वाश्चिनवर्गे या मध्यपिण्ड (Median mass) कहा। उदाहरणार्थ- हिमालय के संदर्भ में कोबर ने टैथिस को भूसन्नति और उसके उत्तर में अंगारा लैण्ड तथा द. में गोंडवानालैण्ड को अग्रदेश बताया। दोनों अग्रदेशों के आमने सामने सरकने से टैथिस में वलन पड़ने से उ० में कुनलुन पर्वत तथा द. में हिमालय पर्वत की उत्पत्ति हुई। दोनों के बीच तिब्बत का पठार मध्यपिण्ड के रूप में बचा रहा।

आलोचना– (1.) उनका बताया पृथ्वी के संकुचन से उत्पन्न बल पर्वत निर्माण के लिए उपयुक्त नहीं है
(2.) कोबर ने बताया कि भूसन्नति के दोनों पार्श्व सरकते हैं जबकि स्वेस के अनुसार एक पार्श्व सरकता है
3. पू.प. फैले पर्वतों का स्पष्टीकरण तो हो जाता है परंतु उ.द. फैले पर्वतों का स्पष्टीकरण नहीं होता

कोबर के भूसन्नति सिद्धांत द्वारा कुनलुन व हिमालय पर्वत तथा तिब्बत के पठार की उत्पत्ति का स्पष्टीकरण

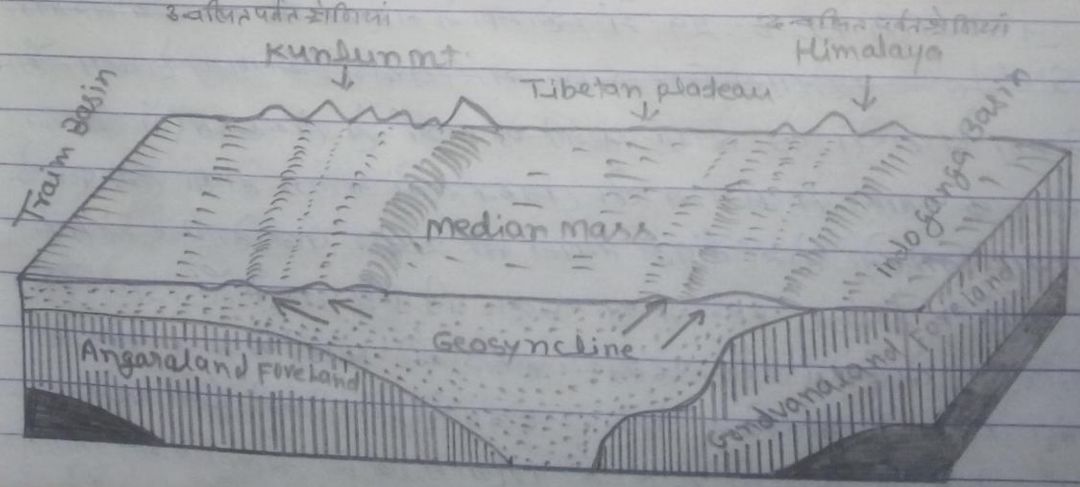

भूसन्नति (Geosynclines) A, U

"भूसन्नतियाँ लम्बे, संकरे तथा उथले जलीय भाग होती हैं, जिनमें तलछटीय निक्षेप के साथ साथ तली में धँसाव होता है।"

विशेषताएं — (1) ये उथले जलीय भाग होती हैं (2) इनमें तलछटीय जमाव होता रहता है (3) ये लम्बी किंतु संकरी होती हैं (4) ये गतिशील होती हैं तथा रूप परिवर्तित होता रहता है (5) ये प्रायः दो दृढ़ भूखण्डों के बीच होती हैं।

भूसन्नति संकल्पना का विकास — (1) हाल तथा डाना की संकल्पना — (प्रथम प्रतिपादक)
डाना — "भूसन्नतियां, लम्बे, संकरे, उथले तथा निरंतर धँसती हुई जलीय भाग होती हैं।"
हाल — निक्षेप के कारण भूसन्नति की तली में धँसाव होता रहता है, परन्तु जल की गहराई में परिवर्तन नहीं होता है।

(2) हाग की संकल्पना :— (सिद्धांत के रूप में प्रतिपादन) हाग ने बताया कि जहाँ पर आज पर्वत पाये जाते हैं वहाँ पर पहले सागरीय भागों का विस्तार था। भूसन्नतियां गहरे जल का भाग होती हैं, जिनकी लम्बाई चौड़ाई से अधिक होती है। भूसन्नतियों की स्थितियां प्राचीन दृढ़ भूखण्डों के बीच जलक्षेत्र के रूप में थी। मेसोजोइक कल्प में 5 प्राचीन दृढ़ भूखण्ड थे - (1) उ० अटलांटिक मास (2) सिनो साइबेरियन मास (3) अफ्रीका-ब्राजील मास (4) आस्ट्रेलिया-इण्डिया-मेडागास्कर मास (5) पैसिफिक मास। इनके बीच निम्न भूसन्नतियों के जल क्षेत्र थे (1) रॉकीज भूसन्नति 2- यूराल भूसन्नति (3) टेथिस भूसन्नति (4) परिप्रशांत भूसन्नति।

भूसन्नति में अवसादों का जमाव होता रहता है। जब भूसन्नति के पार्श्व भाग से दबाव पड़ता है तो भूसन्नति के तलछट में मरोड़ होने से वलन की क्रिया होने लगती है तथा और वलित पर्वतों का निर्माण होने लगता है।

(3) इवांस ने बताया — कि भूसन्नतियों में इतने विभेद पाये जाते हैं कि इनका एक निश्चित रूप तथा स्थिति बताना असंभव कार्य है। भूसन्नति की स्थिति एवं रूप कैसा भी हो लेकिन उसमें सतत तलछटीय निक्षेप होता रहता है तथा उसकी तली का धँसाव होता जाता है परिणाम स्वरूप तलछट में दबाव के कारण संपीडन होने लगता है और वलित पर्वतों का निर्माण होता है।

(4) शूशर्ट की संकल्पना :— विषमताओं के आधार पर उन्होंने भूसन्नतियों को तीन वर्गों में विभाजित किया है।

अ- एकल भूसन्नति :— (Mono Geo-) इनमें भूसन्नति का केवल एक ही चक्र पाया गया है ये अत्यधिक संकरी तथा लम्बी जलीय भाग थी जिनकी तली में निरंतर धँसाव होता रहा। अप्लेशियन भूसन्नति इसका प्रमुख उदाहरण है।

भूसन्नति की अवस्थाएं

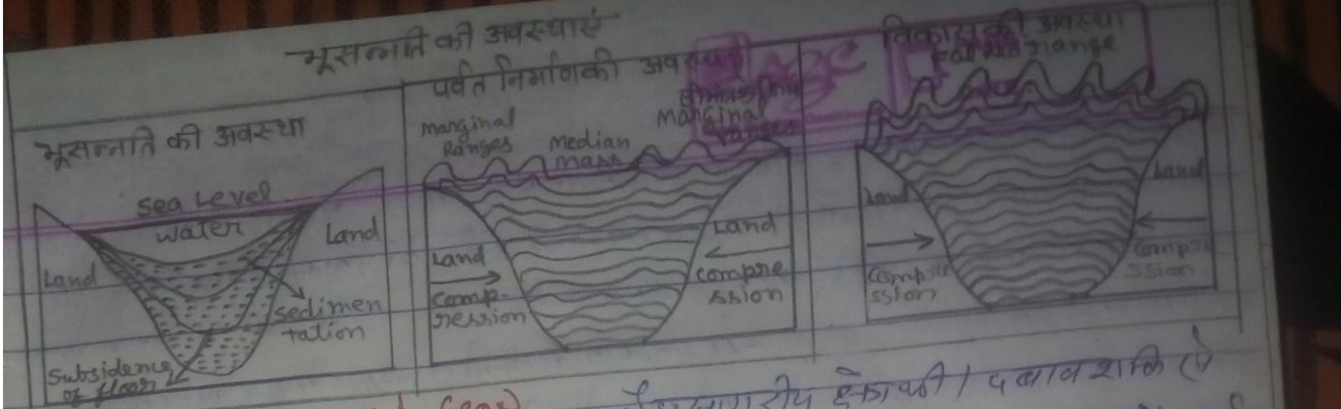

(ब) बहुल भूसन्नति (Poly Geos) :- चौड़ा सागरीय क्षेत्र थी। दबाव शक्ति से उत्पन्न संपीडन के कारण तलछट में वलन पड़ने के फलस्वरूप भूसन्नति में कई समानान्तर भूअपनतियों का निर्माण हुआ जो आगे चलकर पर्वत बने। उदा. रॉकीज व यूराल

(स) मध्यस्थ Meso भूसन्नति :- ये अत्यधिक लम्बे, सँकरे तथा गतिशील सागरीय भाग के रूप में थी जो चारों तरफ से महाद्वीपों से आवृत्त थीं। इसमें कई भूसन्नति चक्र अर्थात् कई बार निक्षेप, अवतलन तथा वलन होते हैं। प्रमुख उदा. टेथिस भूसन्नति थी जिसका अवशिष्ट भाग रूमसागर है। जिससे आल्पस तथा हिमालय पर्वतों का निर्माण हुआ।

(5) आर्थर होम्स की संकल्पना — होम्स ने बताया कि भूसन्नति की तली का धंसाव तलछटीय भार से नहीं बल्कि भूगर्भिक शक्तियों द्वारा होता है। इनके अनुसार निम्न रूपों में भूसन्नतियों का आविर्भाव तथा विकास होता है।

अ. मैग्मा का स्थानांतरण — मध्यवर्ती परत के नीचे से मैग्मा के स्थानांतरित हो जाने से धँसाव होने लगता है तथा भूसन्नतियों का निर्माण होता है। इसके प्रमुख उदाहरण कोरल सागर, तस्मान, अराफुरा, वेडल तथा रास सागर हैं।

ब. रूपांतरण द्वारा — जहाँ पर दो संवहनीय धाराएं धरातल के नीचे मिलती हैं वहाँ पर संपीडन होने के कारण निचली परत में चट्टानों का कायांतरण होने लगता है जिस कारण उनका घनत्व बढ़ जाता है फलस्वरूप निचली परत में अवतलन होता है तथा उस स्थान पर भूसन्नति का निर्माण होता है। कैरेबियन सागर तथा प. रूम सागर इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

(स) संपीडन द्वारा — बड़े बड़े पर्वतों के निर्माण के समय अग्रदेश की तरफ पर्वतों के सामने दबाव की शक्तियों द्वारा स्थल भाग नीचे धँस जाता है तथा भूसन्नति का निर्माण होता है। प्रमुख उदा. फारस की खाड़ी व सिंधु गंगा का खड्ड।

द. सियाल परत का पतला होने से — जब महाद्वीपीय धरातल के नीचे दो संवहनीय धाराएं विपरीत दिशा में प्रवाहित होती हैं तो दो संभावनाएं होती हैं प्रथम तनाव के कारण भूपटल नीचे से पतला होता रहता है जिस कारण दो अलग खण्डों में फैलाव होने से भूसन्नति का निर्माण होता है जैसे ... द्वितीय अधिक तनाव से स्थलखण्ड एक दूसरे से अलग हो जाते हैं तथा भूसन्नति का निर्माण होता है जैसे - यूराल।

(6) डस्टर महोदय — ने पर्वत श्रेणियों की रचना के आधार पर भूसन्नतियों को 3 भागों में बाँटा है।

अ. अंतर्महाद्वीपीय भूसन्नति :— यह भूसन्नति सदैव दो महाद्वीपों या स्थल खण्डों के बीच पायी जाती है। जैसे- यूराल भूसन्नति।

(ब) परिमहाद्वीपीय भूसन्नति :— ये महाद्वीपों के किनारे वाले भागों में पायी जाती है। जैसे अप्लेशियन भूसन्नति

(स) परिसागरीय भूसन्नति :— सागर व स्थल के मिलन किनारों के सहारे पायी जाती है।

भूसन्नति की अवस्थाएं —

वलित पर्वतों की उत्पत्ति भूसन्नतियों से मानी जाती है इसलिए भूसन्नतियों को पर्वतों का पालना (Cradle of mountains) कहा जाता है। इनके विकास को 3 अवस्थाओं में विभा.

1. भूसन्नति (Lithogenesis) अवस्था :— यह पर्वत निर्माण एवं भूसन्नति की प्रारंभिक अवस्था है। इसमें भूसन्नति की उत्पत्ति होती है जिसमें नदियों द्वारा लाये अवसादों का जमाव होता है। अवसादन से भार बढ़ता है तथा तली का अवतलन होता है।

2. पर्वत निर्माण की (Orogenesis) अवस्था :— भूसन्नति में अवसाद का निक्षेप एक सीमा तक ही होता है। इसके बाद संतुलन स्थापित करने के लिए क्षैतिज हलचल एवं तनाव तथा संपीडन होने लगता है इससे भूसन्नति के तलछट में वलन पड़ने लगते हैं और मोड़दार पर्वत श्रेणियों का निर्माण होता है।

3. विकास की अवस्था :— पर्वत निर्माण प्रक्रिया लम्बी है। अतः इसका उत्थान धीरे-धीरे होता है। हिमालय का विकास इओसीन युग से महाप्लीस्टोसीन युग तक होता रहा है तथा अब भी इसके ऊपर उठने के प्रमाण मिले हैं। पर्वतों के निर्माण के साथ ही उनपर अनाच्छादन की क्रिया प्रारंभ हो जाती है जिससे पर्वतों की ऊँचाई कम होने लगती है और उनके विशिष्ट आकारों का निर्माण हो जाता है। कभी कभी ऊँचाई में कमी के कारण तथा अन्यत्र भार में अधिकता के कारण पर्वतीय संतुलन की स्थापना के लिए पर्वत का भाग ऊपर उठने लगता है। यह अवस्था भूसन्नति तथा पर्वत विकास की अवस्था कहलाती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कोई एक निष्कर्ष निकालना कठिन है, क्योंकि विद्वानों में मतभेद बना रहा है। किंतु यह एकमत से स्वीकार किया गया है कि इन भूसन्नतियों का अस्तित्व प्राचीन समय से रहा है तथा वलित पर्वतों की उत्पत्ति इनसे ही हुई है।

पृथ्वी की आंतरिक संरचना

पृथ्वी की बाह्य स्थलाकृतियाँ उसकी आंतरिक संरचना से घनिष्ठ संबंध रखती हैं। यद्यपि पृथ्वी की आंतरिक संरचना का अध्ययन मुख्यत: भूगर्भशास्त्र का विषय है परंतु स्थलीय स्थलाकृतियों के विश्लेषण के लिए भूगोल में भी इसका अध्ययन किया जाता है। चूंकि आंतरिक भाग मानव के लिए दृश्य नहीं है, अत: इसके संबंध में जानकारी प्राय: अप्रत्यक्ष साधनों से ही हो सकी है। इन साधनों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. अप्राकृतिक साधन (Artificial Sources)

(क) घनत्व:- पृथ्वी का औसत घनत्व 5.5 है जबकि भू-पर्पटी (Crust) का घनत्व लगभग 3.0 है। इससे स्पष्ट है कि आंतरिक भागों में घनत्व की अधिकता होगी। घनत्व संबंधी विभिन्न प्रमाणों से यह पता चलता है कि पृथ्वी के क्रोड (Core) का घनत्व सर्वाधिक है।

(ख) दबाव:- क्रोड (Core) के अधिक घनत्व के संबंध में चट्टानों के भार व दबाव का संदर्भ लिया जा सकता है। यद्यपि दबाव बढ़ने से घनत्व बढ़ता है किन्तु प्रत्येक चट्टान की अपनी एक सीमा है जिससे अधिक इसका घनत्व नहीं हो सकता है, चाहे दबाव कितना ही अधिक क्यों न कर दिया जाए। तात्पर्य यह है कि आंतरिक भाग के चट्टान अधिक घनत्व वाले भारी धातुओं से बने हैं।

(ग) तापक्रम:- सामान्य रूप से प्रत्येक 32 मीटर की गहराई पर तापमान में $1^{0}C$ की वृद्धि होती है परंतु बढ़ती गहराई के साथ तापमान की वृद्धि दर में भी गिरावट आती है। प्रथम 100 किमी. की गहराई में प्रत्येक किमी. पर $12^{0}C$ की वृद्धि होती है। उसके बाद के 300 किमी. की गहराई में प्रत्येक किमी. पर $2^{0}C$ एवं उसके पश्चात् प्रत्येक किमी. की गहराई पर $1^{0}C$ की वृद्धि होती है। विवर्तनिक रूप से सक्रिय क्षेत्रों में तापमान अपेक्षाकृत अधिक पाया जाता है। पृथ्वी के आंतरिक भाग से ऊष्मा का प्रवाह बाहर की ओर होता रहता है जो तापीय संवहन तरंगों के रूप में होता है। प्लेट विवर्तनिकी सिद्धांत के आगमन से यह और भी स्पष्ट हो गया है।

2. पृथ्वी की उत्पत्ति से संबंधित सिद्धांतों के साक्ष्य:- ग्रहाणु परिकल्पना जहाँ पृथ्वी के अंतरतम (क्रोड) को ठोस मानती है वहीं ज्वारीय परिकल्पना एवं वायव्य निहारिका परिकल्पना में पृथ्वी के अन्तरतम को तरल माना गया है। इस प्रकार पृथ्वी के आंतरिक भाग के संबंध में दो ही संभावना बनती है, या तो यह ठोस हो सकती है या तरल।

3. प्राकृतिक साधन:

(a) ज्वालामुखी क्रिया: ज्वालामुखी उदगार से निकलने वाला तत्त्व व तरल मैग्मा के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि पृथ्वी की गहराई में कहीं न कहीं ऐसी परत अवश्य है जो तरल या अर्द्धतरल अवस्था में है यद्यपि ज्वालामुखी के उद्गार से भी पृथ्वी की आंतरिक बनावट के संबंध में कोई निश्चित जानकारी नहीं मिल पाती।

(b) भूकम्प विज्ञान के साक्ष्य:- इसमें भूकम्पीय लहरों का सिस्मोग्राफ यंत्र (Seismograph) द्वारा अंकन करके अध्ययन किया जाता है। यह ऐसा प्रत्यक्ष साधन है जिससे पृथ्वी की आंतरिक संरचना के विषय में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध होती है और उसके बारे में स्पष्ट अनुमान लगा पाना संभव हुआ है।

भूकंपीय लहरों की गति में भिन्नता के आधार पर पृथ्वी की आंतरिक संरचना को जानने का प्रयास किया गया है। International Union of Geodesy and Geophysics के शोध इस दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्त्व रखते हैं। इसने पृथ्वी के आंतरिक भाग को तीन वृहद् मंडलों में विभक्त किया है, जो निम्न है–

भू-पर्पटी (Crust) : IUGG ने इसकी औसत मोटाई 30 किमी. मानी है यद्यपि अन्य स्रोतों के अनुसार क्रस्ट की मोटाई 100 किमी. बताई गई है। IUGG के अनुसार क्रस्ट के ऊपरी भाग में 'P' लहर की गति 6.1 किमी. प्रति सेकेंड तथा निचले भाग में 6.9 किमी. प्रति सेकेंड है। ऊपरी क्रस्ट का औसत घनत्व 2.8 एवं निचले क्रस्ट का 3.0 है। घनत्व में यह अंतर दबाव के कारण माना जाता है। ऊपरी क्रस्ट एवं निचले क्रस्ट के बीच घनत्व संबंधी यह असंबद्धता **'कोनराड**

असंबद्धता' कहलाती है। क्रस्ट का निर्माण मुख्यत: सिलिका और अल्युमिनियम से हुआ है। अत: इसे SiAl परत भी कहा जाता है।

मैंटल (Mantle): क्रस्ट के निचले आधार पर भूकंपीय लहरों की गति में अचानक वृद्धि होती है और यह बढ़कर 7.9 से 8.1 किमी. प्रति सेकेंड तक हो जाती है। इससे निचले क्रस्ट तथा ऊपरी मेंटल के मध्य एक असंबद्धता (Discontinunty) का निर्माण होता है जो चट्टानों के घनत्व में परिवर्तन को दर्शाता है। इस असंबद्धता की खोज 1909 ई. में रूसी वैज्ञानिक ए. मोहोरोविकिक (A. Mohorovicic) ने की। अत: इसे **'मोहो-असंबद्धता'** (Moho-Discontinuty) भी कहा जाता है। मोहो-असंबद्धता से लगभग 2900 किमी. की गहराई तक मेंटल का विस्तार है। इसका आयतन पृथ्वी के कुल आयतन (Volume) का लगभग 83% एवं द्रव्यमान (Mass) का लगभग 68% है। मेंटल का निर्माण मुख्यत: सिलिका और मैग्नीशियम से हुआ है अत: इसे SiMa परत भी कहा जाता है। मेंटल को IUGG ने भूकंपीय लहरों की गति के आधार पर पुन: तीन भागों में बांटा है- (1) मोहो असंबद्धता से 200 किमी. (2) 200 किमी. से 700 किमी. (3) 700 किमी. से 2900 किमी.। ऊपरी मेंटल में 100 से 200 किमी. की गहराई में भूकंपीय लहरों की गति मंद पड़ जाती है एवं यह 7.8 किमी. प्रति सेकेंड मिलती है। अत: इस भाग को 'निम्न गति का मंडल' (Zone of Low Velocity) भी कहा जाता है। ऊपरी मेंटल एवं निचले मेंटल के बीच घनत्व संबंधी यह असंबद्धता **रेपेटी असंबद्धता** कहलाती है।

क्रोड़ (Core): निचले मैंटल के आधार पर 'P' तरंगों की गति में अचानक परिवर्तन आता है और यह बढ़कर 13.6 किमी. प्रति सेकेंड हो जाती है। यह चट्टानों के घनत्व में एकाएक परिवर्तन को दर्शाता है जिससे एक प्रकार की असंबद्धता उत्पन्न होती है। इसे **'गुटेनबर्ग-विशार्ट असंबद्धता'** भी कहते हैं। गुटेनबर्ग-असंबद्धता से लेकर 6371 किमी. की गहराई तक के भाग को क्रोड़ कहा जाता है। इसे भी दो भागों में बांटकर देखते हैं- 2900 से 5150 किमी. और 5150-6371 किमी.। इन्हें क्रमश: वाह्य अंतरतम तथा आंतरिक अंतरतम (क्रोड़) कहते हैं। इनके बीच पायी जानेवाली घनत्व संबंधी असंबद्धता **'लैहमेन असंबद्धता'** कहलाती है। क्रोड़ में सबसे

पृथ्वी की आंतरिक संरचना

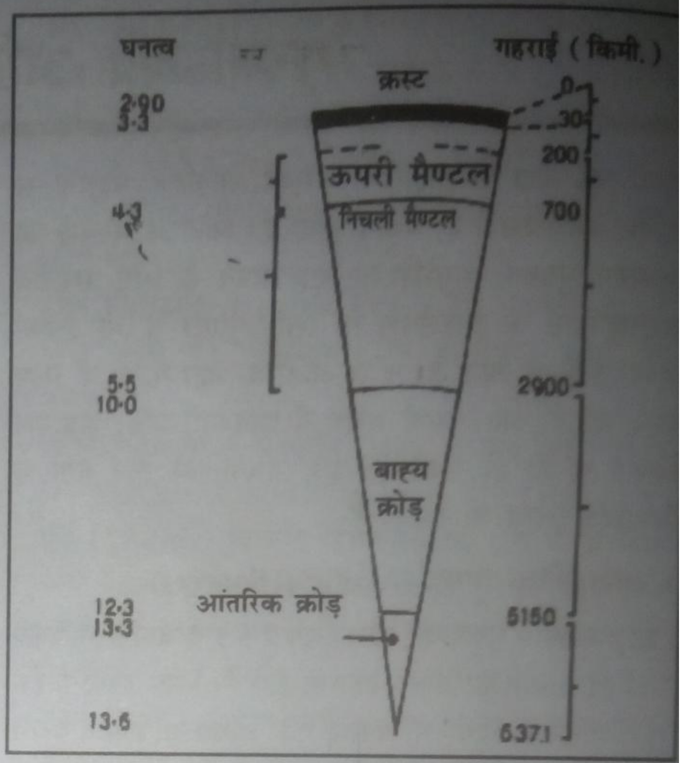

International Union of Geodesy and Geophysics के शोध विवरण के आधार पर पृथ्वी के आंतरिक भाग के विभिन्न मंडल, उनकी गहराई तथा घनत्व का आरेख द्वारा प्रदर्शन

ऊपरी भाग में घनत्व 10 होता है जो अंदर जाने पर 12 से 13 तथा सबसे आंतरिक भागों में 13.6 हो जाता है। इस प्रकार क्रोड़ का घनत्व मैंटल के घनत्व के दोगुणे से भी अधिक होता है। बाह्य अंतरतम में 'S' तरंगें प्रवेश नहीं कर पाती है। आंतरिक अंतरतम में जहाँ घनत्व सर्वाधिक है, तुलनात्मक दृष्टि से अधिक तरल होने के कारण 'P' तरंगों की गति 11.23 किमी. प्रति सेकेंड रह जाती है। यद्यपि अत्यधिक तापमान के कारण क्रोड़ को पिघली हुई अवस्था में रहना चाहिए किन्तु अत्यधिक दबाव के कारण यह अर्द्धतरल या प्लास्टिक अवस्था में रहता है। क्रोड़ का आयतन पूरी पृथ्वी का मात्र 16% है परंतु इसका द्रव्यमान पृथ्वी के कुल द्रव्यमान का लगभग 32% है। क्रोड़ के आंतरिक भागों में यद्यपि सिलिकन की भी कुछ मात्रा रहती है परंतु इसका निर्माण मुख्य रूप से निकेल और लोहा से हुआ है। अत: इसे NiFe परत भी कहते हैं।

विषय–भूगोल , बी. ए. प्रथम बर्ष (प्रश्न–पत्र , प्रथम)

पृथ्वी की उत्पत्ति के सिद्धांत

A.2. लाप्लास की नीहारिका परिकल्पना Nebular Hypothesis of Laplace:-

फ्रांसीसी विद्वान लाप्लास ने 1796 में अपनी पुस्तक Exposition of the world system में अपनी Nebular Hypothesis प्रस्तुत की। लाप्लास ने काण्ट की त्रुटियों को दूर कर अपना संशोधित मत प्रस्तुत किया। लाप्लास के अनुसार अतीतकाल में ब्रह्माण्ड में एक गतिशील एवं तप्त नीहारिका विद्यमान थी। नीहारिका की गति के कारण विकिरण द्वारा ऊष्मा का ह्रास होने लगा और उसका बाहरी भाग शीतल होने लगा और उसमें संकुचन होने लगा। संकुचन के कारण नीहारिका के आकार में ह्रास होने लगा जिसके फलस्वरूप उसकी गति में वृद्धि होने लगी। अत्यधिक गति के कारण केंद्रापसारित बल के प्रभाव से नीहारिका का मध्यवर्ती भाग बाहर की ओर उभरने लगा। ऊपरी भाग, मध्यवर्ती भाग के साथ भ्रमण नहीं कर सका और गोल छल्ला के रूप में नीहारिका से अलग हो गया और उसका चक्कर लगाने लगा।

लाप्लास के अनुसार नीहारिका से केवल एक ही छल्ला बाहर निकला तथा बाद में यह नौ खण्डों में विभाजित हो गया और नौ ग्रहों का निर्माण हुआ। इसी क्रिया की पुनरावृत्ति के कारण ग्रहों से उपग्रहों का निर्माण हुआ। नीहारिका का अवशिष्ट भाग सूर्य बना।

रॉश का संशोधन :- 19वीं शताब्दी के मध्य में फ्रांसीसी विद्वान रॉश ने यह संशोधन किया कि नीहारिका से केवल एक छल्ला बाहर नहीं निकला बल्कि नौ छल्ले निकले तथा प्रत्येक छल्ला घनीभूत होकर ग्रह बना। इस क्रिया की पुनरावृत्ति से ग्रहों से उपग्रहों का निर्माण हुआ।

प्रारंभ में इस परिकल्पना को पर्याप्त समर्थन मिला किंतु आज सौरमण्डल संबंधी नवीन वैज्ञानिक तथ्यों एवं सिद्धांतों के कारण इस परिकल्पना का समर्थन मात्र रहा इसकी निम्न त्रुटियों के कारण इसे तर्कहीन प्रमाणित कर दिया गया।

1. कोणीय आवेग की स्थिरता के सिद्धांत के अनुसार मौलिक नीहारिका का कोणीय आवेग, वर्तमान सूर्य एवं उसके सदस्य ग्रहों के कुल कोणीय आवेग के बराबर होना चाहिए। जबकि ऐसा न होकर संपूर्ण कोणीय आवेग का 98% भाग ग्रहों तथा 2% भाग वर्तमान सूर्य में है।
2. नीहारिका से केवल नौ छल्ले ही क्यों निकले ? अधिक क्यों नहीं ? घनीभवन से सारा पदार्थ एक ही गोल पिण्ड के रूप में नहीं बदल सकता। नीहारिका से छल्लों के निकलने का क्रम बंद क्यों हो गया।
3. नीहारिका से उत्पन्न ग्रह प्रारंभ में द्रवित अवस्था में रहे होंगे, परंतु द्रवित अवस्था में ग्रह निर्बाध रूप में परिभ्रमण नहीं कर सकते।
4. इस परिकल्पना के अनुसार सभी ग्रहों के उपग्रहों को अपने जनक ग्रह की दिशा में ही घूमना चाहिए जबकि शनि एवं बृहस्पति ग्रह के उपग्रह विपरीत दिशा में घूमते हैं।
5. तप्त नीहारिका कहाँ से आयी ? उसमें ऊष्मा एवं गति कैसे उत्पन्न हुई ? इन प्रश्नों के उत्तर इस परिकल्पना में नहीं मिलते हैं।
6. यदि सूर्य नीहारिका का ही भाग है तो सरल अवस्था में होना चाहिए जिससे ऐसा लगे कि एक नवीन छल्ला पृथक होकर बाहर निकलने वाला है। परंतु ऐसा नहीं है।

उपर्युक्त त्रुटियों के कारण वर्तमान में यह परिकल्पना मान्य नहीं है।

B.1. चैम्बरलिन तथा मोल्टन की ग्रहाणु (प्ले... परिकल्पना :

DATE: 1905

USA के भूविज्ञानी मोल्टन ने 1905 में व ज्योतिर्विज्ञानी चेम्बरलिन ने 1905 में ग्रहाणु परि-कल्पना प्रस्तुत की। उनके अनुसार सूर्य एक सर्पिल नीहारिका के रूप में शून्य में परिभ्रमण कर रहा था तभी एक महानतम तारा सूर्य के निकट पहुँचा। इस तारे की आक-र्षण शक्ति से सूर्य का ऊपरी भाग विदीर्ण होने लगा और उसमें से अनेक छोटे-2 टुकड़े निकल कर पृथक हो गये। इन टुकड़ों को ग्रहाणु की संज्ञा दी गयी। मूलपिण्ड का अवशिष्ट भाग वर्तमान सूर्य है। बिखरे हुए टुकड़े कालांतर में केन्द्रकों के रूप में घनीभूत हो गये तथा उनसे ग्रहों एवं उपग्रहों की रचना हुई। ये ग्रह पूर्णतः ठोस थे तथा सूर्य (सर्पिल नीहारिका के रूप में था)

इस परिकल्पना के समर्थक मानते हैं कि इससे पृथ्वी, वायुमण्डल व महासागरों की उत्पत्ति के बारे में पर्याप्त जानकारी मिलती है। उनका तर्क है कि ग्रहाणुओं के आपस में टकराने और पुनर्संगठित होने से दबाव बढ़ा और ऊष्मा की उत्पत्ति हुई जिससे ज्वालामुखी क्रियाएं होने लगीं। ज्वालामुखी क्रियाओं से जलवाष्प व गैसों की उत्पत्ति हुई जिससे वायुमण्डल बना। जब वायुमण्डल की जलवाष्प संतृप्त बिंदु पर पहुँच गयी तो झीलों के रूप में महासागरों की उत्पत्ति हुई।

मूल्यांकन :- (1) इस परिकल्पना के अनुसार सभी ग्रहों का निर्माण अलग-2 स्वतंत्र रूप से हुआ है। इस कारण ग्रहों को एक नियमानुसार परिभ्रमण नहीं करना चाहिए, किंतु सभी ग्रह एक ही नियमानुसार परिभ्रमण करते हैं।

(2) ग्रहाणुओं के एकत्रीकरण के द्वारा नौ ग्रह ही क्यों बने? कम या ज्यादा क्यों नहीं बने?

(3) ग्रहाणुओं के संगठन से निर्मित ग्रहों का उतना कोणीय आवेग नहीं हो सकता जितना कि वास्तव में है।

(4) इस विचारधारा के अनुसार ग्रह सदैव ठोस थे परंतु पृथ्वी प्रारंभिक काल में तरलावस्था में थी।

(5) दो तारे एक दूसरे के समीप क्यों आये? तारे की आकर्षण शक्ति से विखंडित पदार्थ पुनः तारे से क्यों नहीं मिले? इन आपत्तियों के समाधान इस परिकल्पना द्वारा प्रस्तुत नहीं किये गये।

B.2. जेम्स जीन्स की ज्वारीय (Tidal) परिकल्पना :-

ब्रिटिश गणितज्ञ जेम्स जीन्स ने 1919 में अपनी ज्वारीय परिकल्पना प्रस्तुत की। उनके अनुसार आदिकालीन सूर्य गैस का धधकता हुआ विशाल पुंज था जो अपनी कक्षा में भ्रमण कर रहा था तभी एक भ्रमण करता हुआ विशालकाय तारा सूर्य के समीप आने लगा। इस तारे की आकर्षण शक्ति से सूर्य में ज्वार उत्पन्न होने लगा। जब तारा सूर्य के अधिक निकट आ गया तो ज्वारीय पदार्थ सूर्य से पृथक होकर तारे की ओर अग्रसर हुआ किंतु तब तक तारा काफी दूर निकल चुका था जिस कारण ज्वारीय पदार्थ न तो तारे के पास जा सका और न ही सूर्य में वापस। प्रत्युत सूर्य की आकर्षण शक्ति से प्रभावित होकर सूर्य की परिक्रमा करने लगा। करोड़ों km लम्बे सिगार के आकार का ज्वारीय पदार्थ बीच में मोटा किनारों

पर पड़ता था। जिसका कारण सूर्य तथा तारे का आकर्षण था। यह ज्वारीय पदार्थ ठण्डा होने से संकुचित होने लगा तथा विखंडित होकर विभिन्न आकार के ठोस ग्रहों में परिणित हो गया। बाद में विभिन्न ग्रहों के सूर्य के निकट आने पर सूर्य की आकर्षण शक्ति से उनमें भी ज्वार उत्पन्न हुए तथा ज्वारीय पदार्थ के विखंडित तथा घनीभूत होने से उपग्रहों का निर्माण हुआ।

जेफ्रीने 1929 में इसमें यह संशोधन किया कि सूर्य तथा तारे के अलावा तीसरा तारा घूमता हुआ आ गया। जिससे उनमें टक्कर हो गयी और उसके कुछ भाग आकाश में बिखर गये। इन पदार्थों से ही कालांतर में ग्रहों व उपग्रहों के।

मूल्यांकन:(1) ज्वार उद्भेदन का अभिकर्ता विशाल तारा कहाँ से आया तथा बाद में कहाँ गया? दुबारा सूर्य के समीप क्यों नहीं आया? सूर्य की आकर्षण शक्ति से उसमें ज्वार उत्पन्न क्यों नहीं हुआ।

(2) सूर्य से निःसृत पदार्थों का घनीभवन किस प्रकार हुआ।

(3) ग्रहों की सिगार आकृति अनुरूप व्यवस्था में मंगल ग्रह तदनुरूप नहीं है।

(4) तारों में आपस में टकराने की संभावनाएं बहुत कम हैं।

(5) यह परिकल्पना अधिक कोणीय संवेग को समझने में असमर्थ है।

8.3. होयल तथा लिटिलटन की नवतारा (Nova) परिकल्पना :-

कैम्ब्रिज वि.वि. के 2 गणितज्ञ F होयल तथा R लिटिलटन ने सौरपरिवार की उत्पत्ति के सम्बंध में अपनी पुस्तक "Nature of the univers" में 1939 में "नवतारा" सिद्धांत प्रस्तुत किया। लिटिलटन के अनुसार ब्रह्माण्ड में तीन तारे थे सूर्य, उसका साथी तारा तथा पास आता हुआ एक अन्य तारा।

होयल के अनुसार तारे हाइड्रोजन गैस के बने हैं। ये तारे ब्रह्माण्ड में बिखरी विरल गैस राशि का कुछ भाग ग्रहण करके धीरे-धीरे बढ़ते रहते हैं। इनके आकार की वृद्धि के साथ-साथ तापमान में भी वृद्धि होती जाती है। साथी तारा अपने विकिरण को कायम रखने के लिए अपने हाइड्रोजन भंडार का तीव्रता से उपभोग कर रहा था। अंत में हाइड्रोजन का भंडार समाप्त हो गया फलस्वरूप साथी तारे में केंद्रीय आणविक प्रतिक्रिया प्रारंभ हो गई जिस कारण साथी तारा ध्वस्त होकर भयंकर रूप में विस्फोटित हो गया। इस प्रकार गैस की विशाल धूलराशि का आविर्भाव हो गया जिसके घनीभवन से विभिन्न ग्रहों की रचना हुई।

8.4. ऑटोस्मिड की अंतरतारक धूल (Inter-steller Dust) परिकल्पना:-

रुसी वैज्ञानिक ऑटोस्मिड ने 1953 मे अपनी अंतरतारक धूल परिकल्पना का प्रतिपादन किया। आदिकाल में ब्रम्हाण्ड में अत्यधिक मात्रा में गैस एवं धूलकण सूर्य का चक्कर लगा रहे थे। जो धीरे धीरे घनीभूत होकर संगठित होते गये और एक चपटी तश्तरी में बदल गये। गैस एवं धूलकणों का संगठन कई केंद्रों के इर्द गिर्द हुआ जिससे विभिन्न संगठित राशियों में पारस्परिक घर्षण उत्पन्न हो गया। घर्षण क्रिया से इन धूल गैस संगठित पुंजों में ताप की उत्पत्ति हो गयी। घर्षण के अवरोध के कारण सूर्य का परिभ्रमण भी मंद पड़ गया।

इस प्रकार कई ठोस पिण्ड बन गये जो अंततः ग्रह बने और अपने समीप की धूलकणों को आत्मसात करते गये और दीर्घकाल के पश्चात वृहद ग्रह बन गये। शेष गैस धूल कणों का परिभ्रमण जारी रहा और ये संगठित होते गये और कालांतर में उपग्रहों में परिणित हो गये।

समस्थिति (Isostasy)

"परिभ्रमण करती हुई पृथ्वी के ऊपर स्थित क्षेत्रों (पर्वत, पठार, मैदान) एवं गहराई में स्थित क्षेत्रों (समुद्र, झील) में भौतिक अथवा यांत्रिक स्थिरता की दशा को संतुलन कहते हैं।" Isostasy शब्द ग्रीक भाषा के isostasious = समस्थिति से बना है। संतुलन शब्द का सर्व प्रथम प्रयोग अमरीकन भूगर्भवेत्ता डटन ने 1889 में किया।

संतुलन सिद्धांत की खोज — सन 1859 ई. में सिंधु-गंगा के मैदान के अक्षांशों के निर्धारण हेतु भूसर्वेक्षण भारत सरकार के सर्वेयर जनरल सर जार्ज एवरेस्ट के निर्देशन में हो रहा था। उस समय कल्याण तथा कल्याणपुर नामक दो स्थानों का अक्षांशीय माप त्रिभुजीकरण तथा खगोलीय विधि से लिया गया तो दोनों मापों में 5.236" का अंतर आ गया। जब दोनों मापों में अंतर आने का कारण पूछा गया तो एयरी महोदय ने हिमालय पर्वत की निकटता बताया। प्राट महोदय ने अंतर 15.885" बताया। इस प्रकार संतुलन सिद्धांत का सूत्रपात हुआ तथा कई विद्वानों ने अपने मत व्यक्त किये जिनमें कुछ निम्नानुसार हैं।

(1) सर जार्ज एयरी की संकल्पना :- सर्वप्रथम उन्होंने बताया कि पृथ्वी की क्रस्ट अधिक घनत्व वाले अधःस्तर (substratum) में तैर रही है। इस प्रकार हिमालय भारी ग्लासी मैगमा में तैर रहा है। उन्होंने स्पष्ट किया कि जिस प्रकार एक नाव पानी पर तैरती है तथा उसका अधिकांश भाग जल में डूबा रहता है उसी प्रकार हिमालय भी अधिक घनत्व वाले मैगमा में तैर रहा है तथा उसका अधिकांश भाग नीचे काफी गहराई तक व्याप्त है। संक्षेप में एयरी के मत को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं कि ऊँचे उठे भाग काफी गहराई तक अपनी लंबी जड़ से सबस्ट्रेटम के अधिक घनत्व वाले भाग को हटा देते हैं जिस कारण ऊँचे उठे भागों के नीचे काफी गहराई तक हल्के पदार्थ का विस्तार होता है। ऐसा पर्वतों के विषय में होता है इस प्रकार ये संतुलित होकर पृथ्वी पर स्थित हैं।

समान घनत्व वाले काष्ठ के टुकड़े

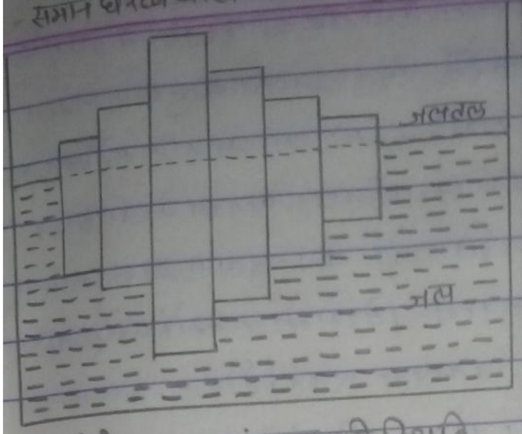

एयरी के अनुसार संतुलन की स्थिति

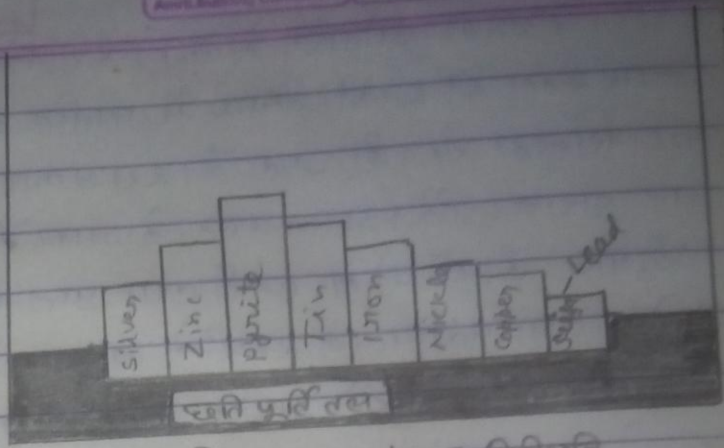

प्राट के अनुसार संतुलन की स्थिति

(२) प्राट की संकल्पना :- प्राट ने बताया कि ऊँचाई एवं घनत्व में उल्टा अनुपात होता है। उनके अनुसार एक क्षतिपूर्ति तल होता है जिसके ऊपर घनत्व में अंतर पाया जाता है तथा नीचे समान घनत्व होता है। एक स्तंभ में घनत्व नहीं बदलता है किंतु एक स्तंभ से दूसरे स्तंभ में घनत्व में अंतर पाया जाता है। इस प्रकार प्राट ने अपने मत "uniform depth with varying density" का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार पृथ्वी के विभिन्न उच्चावच इसलिए रुके हैं क्योंकि उनके घनत्व में अंतर पाया जाता है परंतु उनका भार संतुलन रेखा के सहारे बराबर होता है।

(3) हेफोर्ड एवं बॉवी की संकल्पना :- हेफोर्ड के अनुसार भूपृष्ठ के नीचे अलग-२ घनत्व के भाग विद्यमान हैं, परंतु धरातल के नीचे की तरफ कुछ गहराई में एक ऐसा तल है जिसके ऊपर घनत्व में अंतर होता है तथा नीचे की तरफ घनत्व समान होता है। इसे उन्होंने 'समतोल तल' (Level of Compensation) बताया है। इस तल के ऊपर ऊँचाई तथा घनत्व के साथ उल्टा अनुपात होता है। समतोल तल धरातल से 100 km की गहराई पर विद्यमान है। इस तल के ऊपर कम घनत्व वाले चट्टानी भागों की ऊँचाई अधिक तथा अधिक घनत्व वाले चट्टानी भागों की ऊँचाई कम होगी।

बॉवी के अनुसार संतुलन की स्थिति

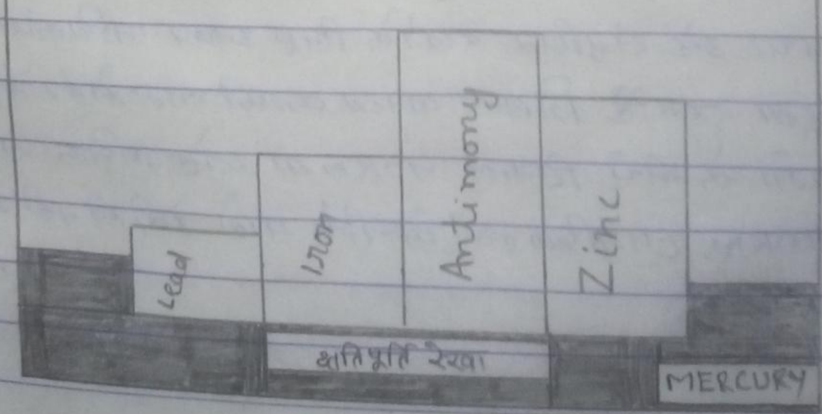

चित्र में आंतरिक मैदान, पहाड़, तटीय मैदान तथा तट से दूर स्थित भाग के चार स्तंभ हैं। इनकी ऊँचाई में पर्याप्त अंतर है किंतु इनका संतुलन घनत्व की भिन्नता से हो जाता है। इस प्रकार सभी स्तंभों का भार "समतौल तल" पर बराबर है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि ऊँचाई तथा घनत्व में विलोम अनुपात है। बॉवी ने एयरी तथा प्राट के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया तथा बताया कि एयरी के अनुसार घनत्व विभिन्न स्तंभों में समान रहता है जबकि प्राट के अनुसार यह घनत्व बदलता रहता है।

(4) जोली की संकल्पना:— जोली ने 1925 में संतुलन सिद्धांत पर अपना मत प्रस्तुत किया। उनके अनुसार समान घनत्व वाले क्षेत्र के नीचे 10 मील मोटी परत होती है जिसके घनत्व में परिवर्तन पाया जाता है। इस दस मील मोटी परत में कम घनत्व वाले क्षेत्र नीचे तक हल्के पदार्थ वाले भूपृष्ठ के रूप में डूबे रहते हैं तथा अधिक घनत्व वाला भाग भारी पदार्थ से भरा होता है।

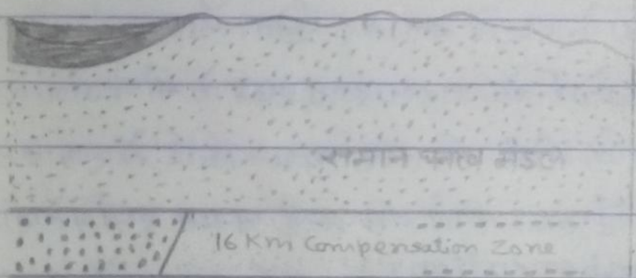

जोली के अनुसार संतुलन की स्थिति

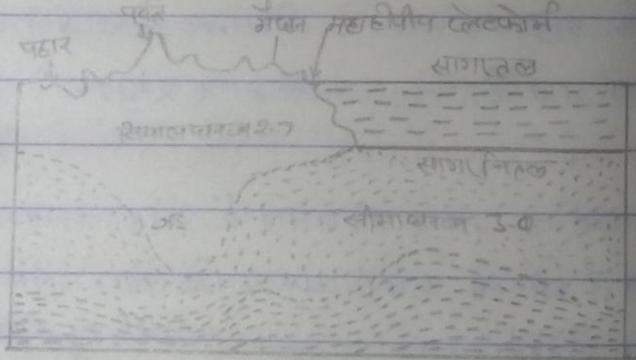

होम्स के अनुसार संतुलन की स्थिति

(5) आर्थर होम्स की संकल्पना:— होम्स का विचार एयरी के मत से पर्याप्त मेल खाता है। उनके अनुसार ऊँचे उठे भागों की रचना हल्के पदार्थ से होती है तथा उन्हें संतुलित रखने के लिए उनका अधिकांश भाग अधिक गहराई तक डूबा रहता है जिसका घनत्व काफी कम होता है। उन्होंने बताया कि पर्वतीय भागों के नीचे सियाल 40 km या उससे अधिक, सागरतल के निकट मैदान के नीचे 10 km, सामुद्रिक तली के नीचे या तो होती ही नहीं या बिल्कुल कम होती है।

सौरमंडल

सूर्य एवं उसके चारों ओर भ्रमण करनेवाले 8 ग्रह, 65 उपग्रह, धूमकेतु, उल्काएँ तथा क्षुद्रग्रह संयुक्त रूप से सौरमंडल कहलाते हैं। सूर्य जो कि सौरमंडल का जन्मदाता है, एक तारा है और ऊर्जा तथा प्रकाश प्रदान करता है। सूर्य की ऊर्जा का स्रोत, उसके केन्द्र में हाइड्रोजन परमाणुओं का नाभिकीय संलयन द्वारा हीलियम में बदलना है।

सूर्य की संरचना : सूर्य का जो भाग हमें आँखों से दिखाई देता है, उसे प्रकाशमंडल (Photosphere) कहते हैं। सूर्य का वाह्यतम भाग जो केवल सूर्यग्रहण के समय दिखाई देता है, कोरोना (Corona) कहलाता है। कभी-कभी प्रकाशमंडल से परमाणुओं का तूफान इतनी तेजी से निकलता है कि सूर्य की आकर्षण शक्ति को पार करके अंतरिक्ष में चला जाता है; इसे सौर ज्वाला (Solar Flares) कहते हैं। जब यह पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करता है तो हवा के कणों से टकराकर रंगीन प्रकाश (Aurora Ligt) उत्पन्न करता है, जिसे उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव पर देखा जा सकता है। उत्तरी ध्रुव पर इसे 'अरौरा बोरियालिस' तथा दक्षिणी ध्रुव पर 'अरौरा आस्ट्रेलिस' कहते हैं। सौर ज्वाला जहाँ से निकलती है वहाँ काले धब्बे-से दिखाई पड़ते हैं। इन्हें ही सौर-कलंक (Sun Spots)कहते हैं। ये सूर्य के अपेक्षाकृत ठंडे भाग हैं, जिनका तापमान 1500^{0}C होता है। सौर कलंक प्रबल चुम्बकीय विकिरण उत्सर्जित करता है, जो पृथ्वी की बेतार संचार व्यवस्था को बाधित करता है। इनके बनने-बिगड़ने की प्रक्रिया औसतन 11 वर्षो में पूरी होती है, जिसे सौर-कलंक चक्र (Sunspot-Cycle) कहते हैं। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) ने ***आदित्य*** नामक उपग्रह का विकास किया है, जो सूर्य के ***कोरोना*** व उससे होने वाले उत्सर्जन के रहस्यों को सुलझाने का प्रयास करेगा।

सूर्य से संबंधित कुछ विशिष्ट तथ्य

पृथ्वी से न्यूनतम दूरी	- 14.70 करोड़ किमी.	केन्द्रीय दबाव	- 1 अरब एटमोस्फेयर
पृथ्वी से अधिकतम दूरी	- 15.21 करोड़ किमी.	घूर्णन अवधि	- 25.38 दिन (भूमध्य रेखा के सापेक्ष), 33 दिन (ध्रुवों के सापेक्ष)।
पृथ्वी से माध्य दूरी	- 14.98 करोड़ किमी.		
सूर्य का व्यास	- 13,92,000 किमी.		
आयतन	- पृथ्वी से 13 लाख गुना	सूर्य की आयु	- 5 बिलियन वर्ष (लगभग)
द्रव्यमान	- पृथ्वी से 3,32,000 गुना	सामान्य तारे का संभावित जीवन काल	- 10 बिलियन वर्ष (लगभग)
तलीय गुरुत्व	- पृथ्वी से 28 गुना		
केन्द्रीय घनत्व	- 100 ग्राम प्रति घन सेमी.	सूर्य से पृथ्वी तक प्रकाश पहुँचने में लगा समय	- 8 मिनट, 18 सेकेंड
रासायनिक संघटन	- हाइड्रोजन-71%, हीलियम 26.5%, अन्य तत्व-2.5%	सूर्य के प्रकाश की चाल	- 3×10^8 m/s (3 लाख किमी./सेकेंड)
फोटोस्फेयर ताप (सतह का ताप)	- 6000^0C	1 प्रकाश वर्ष (सूर्य के प्रकाश द्वारा एक वर्ष में चली गयी दूरी)	- 9.45×10^{13} किमी.
केन्द्र का ताप	- 15 मिलियन^{0}C		
सूर्य धब्बों का ताप	- 1500^0C	1 पारसेक (दूरी की सबसे बड़ी इकाई)	- 3.6 प्रकाश वर्ष
ऊर्जा उत्सर्जन	- 10^{26} जूल/सेकेंड (10^{26}J/s)		

ग्रह

ये सूर्य से ही निकले हुए पिंड हैं एवं सूर्य की परिक्रमा करते हैं। इनका अपना प्रकाश नहीं होता तथा ये सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित होते हैं व ऊष्मा प्राप्त करते हैं। सभी ग्रह सूर्य की परिक्रमा पश्चिम से पूर्व दिशा में करते हैं परन्तु शुक्र व अरुण इसके अपवाद हैं एवं ये सूर्य के चारों ओर पूर्व से पश्चिम दिशा में परिभ्रमण करते हैं। आंतरिक ग्रहों के अंतर्गत बुध, शुक्र, पृथ्वी व मंगल आते हैं। सूर्य से निकटता के कारण ये भारी पदार्थों से निर्मित हुए हैं जबकि, बाह्य ग्रहों में बृहस्पति, शनि, अरुण व वरुण आते हैं जो हल्के पदार्थों से बने हैं। आकार में बड़े होने के कारण इन ग्रहों को 'ग्रेट प्लेनेट्स' भी कहा जाता है। सौरमंडल का सबसे बड़ा ग्रह वृहस्पति और सबसे छोटा बुध है। सौरमंडल के ग्रहों का सूर्य से दूरी के बढ़ते क्रमों में विवरण निम्नानुसार है:-

संशोधित सौरमंडल तंत्र में ग्रह
(तीन वाह्यतम बौने ग्रह जिन्हें प्लूटोन्स कहा गया है)

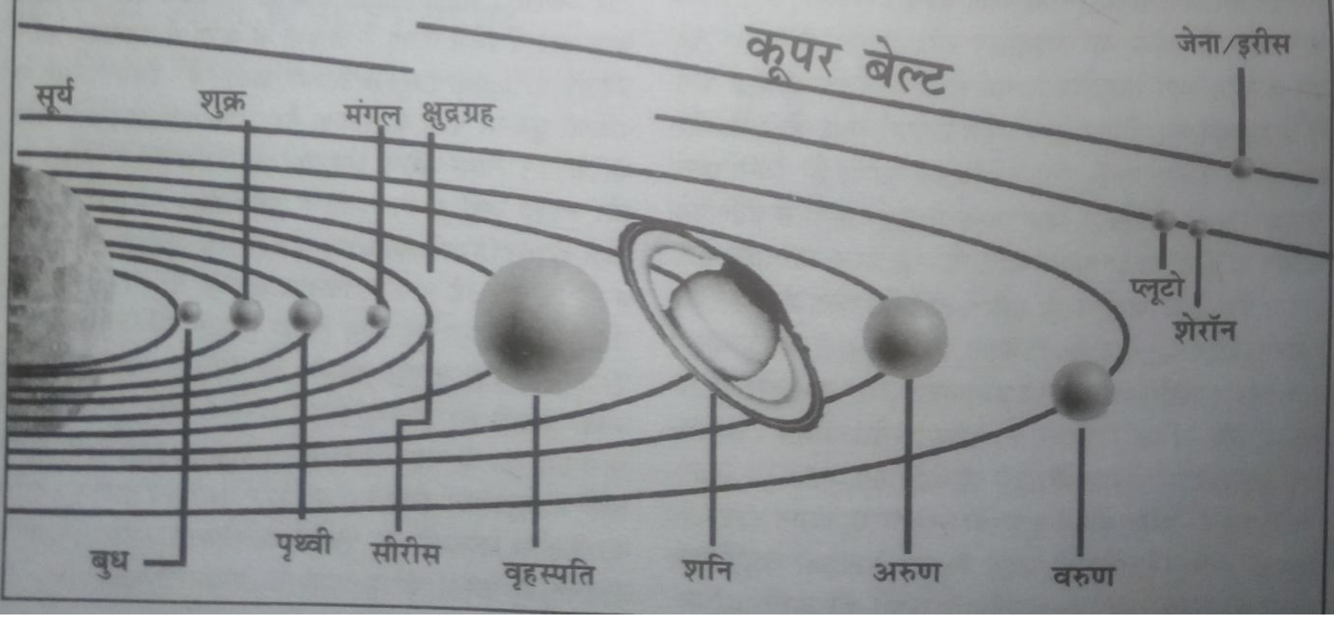

1. बुध (Mercury) : बुध सूर्य का सबसे निकटतम तथा सौर मंडल का सबसे छोटा ग्रह है। यह 88 दिनों में सूर्य की प्रदक्षिणा कर लेता हैं। सूर्य और पृथ्वी के बीच में होने के कारण बुध तथा शुक्र को ***अन्तर्ग्रह*** (Interior Planets) भी कहते हैं। **वायुमंडल के अभाव** के कारण बुध पर जीवन सम्भव नहीं हैं क्योंकि यहाँ दिन अति गर्म व रातें बर्फीली होती हैं। इसका तापान्तर सभी ग्रहों में सबसे अधिक (560°C) है। बुध का एक दिन पृथ्वी के 90 दिन के बराबर होता है। परिमाण (mass) में यह पृथ्वी का 18वाँ भाग है। बुध के सबसे पास से गुजरनेवाला कृत्रिम उपग्रह ***मैरिनर-10*** था जिसके द्वारा लिये गये चित्रों से पता चलता है कि इसकी सतह पर कई पर्वत, क्रेटर और मैदान हैं। इसका ***कोई भी उपग्रह नहीं*** है।

2. शुक्र (Venus) : यह सूर्य से निकटवर्ती दूसरा ग्रह हैं एवं सूर्य की प्रदक्षिणा 225 दिनों में करता हैं। यह ग्रहों की सामान्य दिशा के विपरीत सूर्य का पूर्व से पश्चिम दिशा में परिभ्रमण करता है। यह पृथ्वी के सर्वाधिक नजदीक है। सूर्य व चन्द्रमा के बाद सबसे चमकीला यही दिखाई पड़ता है। इसको ***'सांझ का तारा'*** (Evening Star) या ***'भोर का तारा'*** (Morning Star) कहते हैं क्योंकि यह शाम को पश्चिम दिशा में तथा सुबह पूरब की दिशा में आकाश में दिखाई देता है। आकार व द्रव्यमान में पृथ्वी से थोड़ा ही कम होने के कारण इसे ***'पृथ्वी की बहन'*** कहा जाता है। शुक्र के वायुमंडल में कार्बन-डाई-ऑक्साइड 90-95% तक है। इस कारण यहाँ प्रेशर कुकर की दशा (Pressure Cooker Condition) उत्पन्न होती है। बुध के समान इसका भी ***कोई भी उपग्रह नहीं*** है।

3. पृथ्वी (Earth) : यह सूर्य से दूरी के क्रम में तीसरा ग्रह है एवं सभी ग्रहों में आकार में पाँचवां स्थान रखता है। यह शुक्र और मंगल ग्रह के बीच स्थित है। यह अपने अक्ष पर पश्चिम से पूर्व की ओर भ्रमण करती है।

यह अपने अक्ष पर **23½°** झुकी हुई है। इसका एक परिक्रमण लगभग 365 दिन में पूरा होता है। इसकी सूर्य से औसत दूरी लगभग 15 करोड़ किमी. है। चारों ओर मध्यम तापमान, आक्सीजन और प्रचुर मात्रा में जल की उपस्थिति के कारण यह सौरमंडल का अकेला ऐसा ग्रह है जहाँ ***जीवन*** है। अंतरिक्ष से यह जल की अधिकता के कारण नीला दिखाई देता है। अत: इसे **'नीला ग्रह'** भी कहते हैं।

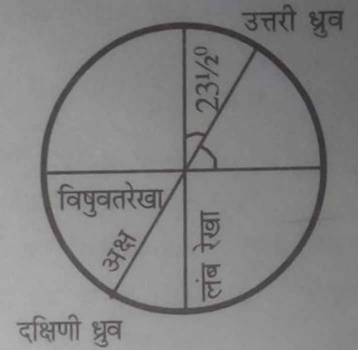

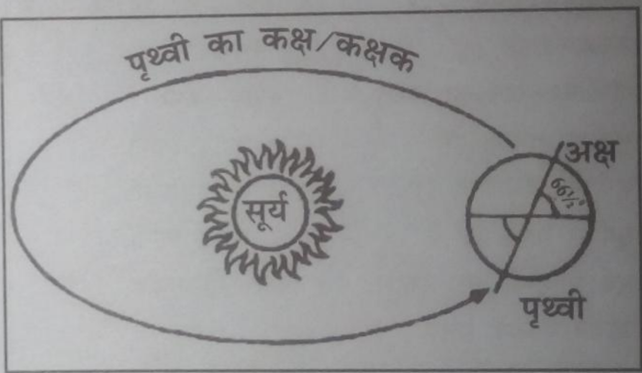

4. मंगल (Mars) : मंगल का सतह लाल होने के कारण इसे ***'लाल ग्रह'*** भी कहते हैं। इस ग्रह पर वायुमंडल अत्यंत विरल हैं। ***मार्स ओडेसी*** नामक कृत्रिम उपग्रह से यहां बर्फ छत्रकों और हिमशीतित जल की उपस्थिति की सूचना मिली है। इसीलिए पृथ्वी के अलावा यह एकमात्र ग्रह है जिस पर ***जीवन की संभावना*** व्यक्त की जाती है। इसकी घूर्णन गति पृथ्वी के घूर्णन गति के समान है। फोबोस तथा डीमोस मंगल के दो उपग्रह हैं । 'डीमोस' सौर मंडल का सबसे छोटा उपग्रह है। मंगल ग्रह का सबसे ऊँचा पर्वत 'निक्स ओलंपिया' है जो एवरेस्ट से तीन गुणा ऊँचा हैं।

5. बृहस्पति (Jupitar) : यह सौरमंडल का सबसे बड़ा ग्रह है तथा सूर्य की प्रदक्षिणा 11.9 वर्ष में करता है। सौरमंडल में इसके 28 उपग्रह हैं जिनमें 'गैनिमीड' सबसे बड़ा है। यह सौरमंडल का सबसे बड़ा उपग्रह है। आयो, यूरोपा, कैलिस्टो, अलमथिया आदि

पृथ्वी : कुछ विविध तथ्य

आकृति	- जियॉड (Geoid)
अक्षध्रुवीय व्यास	- 12714 किमी.
भूमध्यरेखीय व्यास	- 12756 किमी.
ध्रुवीय परिधि (घेरा)	- 40,008 किमी.
विषुवत रेखीय परिधि	- 40,075 किमी.
द्रव्यमान	- 5.97×10^{24} टन
जलीय भाग	- 71%
स्थलीय भाग	- 29%
आयतन	- 10.83×10^{11} घन किमी.
औसत घनत्व	- 5.52 (पानी के घनत्व के सापेक्ष)
पृथ्वी की अनुमानित आयु	- 4.6 बिलियन वर्ष
धरातल के क्षेत्रफल	- 51.1 करोड़ वर्ग किमी.
परिभ्रमण समय	- 23 घंटे 56 मिनट 4 सेकेंड
परिक्रमण समय	- 365 दिन 5 घंटे 48 मि. 46 से.
परिक्रमण वेग	- 29.8 किमी./सेकेंड
परिक्रमण मार्ग का लंबाई	- 96 करोड़ किमी.
सूर्य से न्यूनतम दूरी	- 14.70 करोड़ किमी.
सूर्य से अधिकतम दूरी	- 15.21 करोड़ किमी.
सूर्य से माध्य दूरी	- 14.98 करोड़ किमी.
सूर्य से पृथ्वी तक प्रकाश पहुँचने में लगा समय	- 8 मिनट, 18 सेकेंड
चंद्रमा से दूरी	- 3,84,000 किमी.
समुद्रतल से स्थल की सर्वाधिक ऊँचाई	- 8,848 मी. (माउंट एवरेस्ट)
समुद्रतल से सागर की सर्वाधिक गहराई	- 11,033 मी. (मैरियाना ट्रेंच)

इसके अन्य उपग्रह हैं। वृहस्पति को ***लघु सौर-तंत्र*** (Miniature Solar System) भी कहते हैं। इसके वायुमंडल में हाइड्रोजन, हीलियम, मीथेन और अमोनिया जैसी गैसें पाई जाती हैं। यहाँ का वायुमंडलीय दाब पृथ्वी के वायुमंडलीय दाब की तुलना में 1 करोड़ गुना अधिक है। यह तारा और ग्रह दोनों के गुणों से युक्त होता है क्योंकि इसके पास स्वयं की ***रेडियो ऊर्जा*** है।

6. शनि (Saturn) : यह आकार में दूसरा बड़ा ग्रह है। यह सूर्य की परिक्रमा 29.5 वर्ष में पूरी करता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता या रहस्य इसके मध्यरेखा के चारों ओर पूर्ण विकसित वलयों का होना है, जिनकी संख्या 7 है। यह वलय अत्यंत छोटे-छोटे कणों से मिलकर बने होते हैं जो सामूहिक रूप से गुरुत्वाकर्षण के कारण इसकी परिक्रमा करते हैं। शनि को 'गैसों का गोला' (Globe of Gases) एवं ***गैलेक्सी समान ग्रह*** (Galaxy Like Planet) भी कहा जाता है। आकाश में यह ग्रह पीले तारे के समान दृष्टिगत होता है। इसके वायुमंडल में भी बृहस्पति की तरह हाइड्रोजन, हीलियम, मीथेन और अमोनिया गैसें मिलती हैं। अब तक इसके 30 उपग्रहों का पता लगाया जा चुका है जो कि सभी ग्रहों में सर्वाधिक है। **टिटॉन** शनि का सबसे बड़ा उपग्रह है जो बुध ग्रह के बराबर है। मंगल ग्रह की भांति यह नारंगी रंग का है। टिटॉन पर वायुमंडल तथा गुरुत्वाकर्षण दोनों हैं। इसके अन्य प्रमुख उपग्रह मीमांसा, एनसीलाडु, टेथिस, डीआन, रीया, हाइपेरियन, इपापेटस तथा फोबे हैं। इसमें **फोबे** शनि की कक्षा में घूमने के विपरीत दिशा में परिक्रमा करता है। शनि अंतिम ग्रह है जिसे आँखों से देखा जा सकता है।

7. अरुण (Uranus) : इसकी खोज 1781 ई. में सर विलियम हरशेल द्वारा की गयी। यह सौर मंडल का सातवाँ तथा आकार में तृतीय ग्रह है। अधिक अक्षीय झुकाव के कारण इसे ***'लेटा हुआ ग्रह'*** भी कहते हैं। यह सूर्य की प्रदक्षिणा 84 वर्षों में करता है। यह भी शुक्र ग्रह की भांति ही ग्रहों की सामान्य दिशा के विपरीत पूर्व से पश्चिम दिशा में सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण करता है। यहाँ वायुमंडल वृहस्पति तथा शनि की ही भांति काफी सघन है जिसमें हाइड्रोजन, हीलियम, मीथेन तथा अमोनिया हैं। दूरदर्शी से देखने पर यह हरा दिखाई देता है। सूर्य से दूर होने के कारण यह काफी ठंडा है। शनि की भांति अरुण के भी चारों ओर वलय है जिनकी संख्या 5 हैं। ये हैं–अल्फा, बीटा, गामा, डेल्टा और इपसिलॉन। इसके 21 उपग्रह हैं। अरुण पर सूर्योदय पश्चिम दिशा में एवं सूर्यास्त पूरब की दिशा में होती है। ध्रुवीय प्रदेश में इसे सूर्य से सबसे अधिक ताप तथा प्रकाश मिलता है।

8. वरुण (Neptune) : इसकी खोज जर्मन खगोलज्ञ जोहान गाले ने की। यह 165 वर्ष में सूर्य की परिक्रमा पूरी करती हैं। यहाँ वायुमंडल अति घना हैं। इसमें हाइड्रोजन, हीलियम, मीथेन तथा अमोनिया विद्यमान रहती हैं। यह ग्रह हल्का पीला दिखाई देता है। इसके 8 उपग्रह हैं। इनमें ट्राइटन व मेरीड प्रमुख हैं।

प्लूटो

यम या कुबेर (प्लूटो) की खोज 1930 ई. में क्लाइड टॉम्बैग ने की थी एवं इसे सौरमंडल का नवाँ एवं सबसे छोटा ग्रह माना गया था परंतु 24 अगस्त 2006 में चेक गणराज्य के **प्राग में** हुए इंटरनेशनल एस्ट्रोनॉमिकल यूनियन (IAU) के सम्मेलन में वैज्ञानिकों ने इससे **ग्रह का दर्जा छीन लिया।** सम्मेलन में 75 देशों के 2,500 वैज्ञानिकों ने ग्रहों की नई परिभाषा दी उनके अनुसार ऐसा ठोस पिंड जो अपना गुरुत्व करने लायक विशाल हो, गोलाकार हो और सूर्य का चक्कर काटता हो, ग्रहों के दर्जे में आएगा। साथ ही, इसकी कक्षा पड़ोसी ग्रह के रास्ते में नहीं होनी चाहिए। प्लूटो के साथ समस्या यह हुई कि उसकी कक्षा नेपच्यून की कक्षा (ऑरबिट) से ओवरलैप करती है। सीरीस, शेरॉन (Charon) और इरीस (2003 यूबी-313/जेना) के ग्रह माने जाने के विचार को भी अस्वीकृत कर दिया। नई परिभाषा में इन चारों को बौने ग्रह (Dwarf Planet) का दर्जा दिया गया है। इस प्रकार अब सौरमंडल में मात्र 8 ग्रह रह गए हैं।

आकार के अनुसार ग्रहों का अवरोही क्रम

1. वृहस्पति	2. शनि	3. अरुण	4. वरुण
5. पृथ्वी	6. शुक्र	7. मंगल	8. बुध

द्रव्यमान के अनुसार ग्रहों का अवरोही क्रम

1. वृहस्पति	2. शनि	3. वरुण	4. अरुण
5. पृथ्वी	6. शुक्र	7. मंगल	8. बुध

घनत्व के अनुसार ग्रहों का अवरोही क्रम

1. वृहस्पति	2. शनि	3. वरूण	4. अरूण
5. पृथ्वी	6. शुक्र	7. संगल	8. बुध

टेरेस्ट्रीयल ग्रह

1. बुध	2. शुक्र	3. पृथ्वी	4. मंगल

जोबियन ग्रह

1. वृहस्पति	2. शनि	3. अरुण	4. वरुण

दूरी के अनुसार ग्रहों का आरोही क्रम

1. बुध	2. शुक्र	3. पृथ्वी	4. मंगल
5. वृहस्पति	6. शनि	7. अरूण	8. वरूण

परिक्रमण अवधि के अनुसार ग्रहों का आरोही क्रम

1. बुध	2. शुक्र	3. पृथ्वी	4. मंगल
5. वृहस्पति	6. शनि	7. अरुण	8. वरुण

परिक्रमण वेग के अनुसार ग्रहों का अवरोही क्रम

1. बुध	2. शुक्र	3. पृथ्वी	4. मंगल
5. वृहस्पति	6. शनि	7. अरुण	8. वरुण

उपग्रह

ये वे आकाशीय पिंड हैं जो अपने-अपने ग्रहों की परिक्रमा करते हैं एवं अपने ग्रह के साथ-साथ सूर्य की भी प्रदक्षिणा करते हैं। ग्रहों की भांति इनकी भी अपनी चमक नहीं होती एवं ये सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। ग्रहों के समान उपग्रहों का भ्रमण पथ भी अंडाकार होता है। बुध और शुक्र का कोई उपग्रह नहीं है। सबसे अधिक उपग्रह शनि के है। पृथ्वी का एकमात्र उपग्रह चन्द्रमा है।

चन्द्रमा से संबंधित कुछ विशिष्ट तथ्य

पृथ्वी से माध्य दूरी	- 384,365 किमी.
पृथ्वी से अधिकतम दूरी (अप-भू दूरी)	- 4,06,000 किमी.
पृथ्वी से न्यूनतम दूरी (उप-भू दूरी)	- 3,64,000 किमी.
पृथ्वी के चारों ओर घूमने की अवधि (परिभ्रमण काल)	- 27 दिन 7 घंटे 43 मिनट 11.47 सेकेंड
चन्द्रमा की घूर्णन अवधि (अपने अक्ष पर)	- 27 दिन 7 घंटे 43 मिनट, 11.47 सेकेंड
चन्द्रमा पर वायुमंडल	- अनुपस्थित
चन्द्रमा का व्यास	- 3,476 किमी.
चन्द्रमा का द्रव्यमान पृथ्वी के द्रव्यमान के अनुपात में	- 1 : 81.30
घनत्व (पानी के सापेक्ष)	- 3.34
घनत्व (पृथ्वी के सापेक्ष)	- 0.6058
चन्द्रमा की सतह का अदृश्य भाग	- 0.41 (41%)
चन्द्रमा के उच्चतम पर्वत की ऊँचाई	- 35,000 फीट ; लीबनिट्ज पर्वत, जो कि चंद्रमा के दक्षिणी ध्रुव पर स्थित है।

यद्यपि विभिन्न देशों ने अनेक कृत्रिम उपग्रह भी स्थापित किए हैं जो पृथ्वी की परिभ्रमण दिशा से साम्य स्थापित करने के लिए पूर्व की ओर प्रक्षेपित किए जाते हैं। सामान्यत: दूर-संवेदी उपग्रह ध्रुवीय सूर्य समतुल्य कक्षा (Polar sun-synchronous orbit) में 600-1100 किमी. की दूरी पर स्थापित किए जाते हैं। इन उपग्रहों का परिभ्रमण काल 24 घंटे का होता है। ये भूमध्यरेखा को एक निश्चित स्थानीय समय पर ही पार करते हैं जो सामान्यत: प्रात: 9 से 10 बजे होता है।

सुदूर-संवेदी उपग्रहों के द्वारा पृथ्वी के एक परिभ्रमण में सुदूर-संवेदन किया जाने वाला क्षेत्र **स्वाथ** कहलाता है। विभिन्न उपग्रहों में यह प्राय: 10 से 100 किमी. चौड़ी धरातलीय पट्टी होती है। चूंकि पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर घूर्णन करती है, अतः ये उपग्रह पृथ्वी की परिक्रमा के क्रम में क्रमशः पश्चिम के भाग को बिना कवर किए आगे बढ़ जाते हैं। इसी कारण पूरी पृथ्वी को कवर करने हेतु कई सुदूर-संवेदी उपग्रहों की आवश्यकता पड़ती है। दूर-संचार उपग्रह भू-स्थैतिक कक्षा (Geostationary orbit) में 36,000 किमी. की ऊंचाई पर स्थापित किए जाते हैं। पृथ्वी के घूर्णन काल से मेल खाने के कारण ये स्थिर से प्रतीत होते हैं। इसी कारण इन्हें भू-स्थैतिक उपग्रह भी कहा जाता है। समस्त पृथ्वी को एक साथ कवर करने के लिए न्यूनतम तीन भू-स्थैतिक उपग्रहों की आवश्यकता पड़ती है।

चन्द्रयान

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) ने आंध्र प्रदेश के श्री हरिकोटा स्थित सतीश धवन उपग्रह प्रक्षेपण केंद्र से ध्रुवीय अंतरिक्ष प्रक्षेपण यान PSLV-C-1 के माध्यम से ***चंद्रयान-1*** का 22 अक्टूबर, 2008 को चंद्रमा के कक्ष में सफलतापूर्वक स्थापित किया। इस अभियान में भारत निर्मित मानव रहित अंतरिक्ष यान ***मून इम्पैक्ट प्रोब*** को चंद्रमा की सतह पर उतारा गया। चंद्रयान-1 एक्स-रे स्पेक्ट्रोमीटर, मिनियेचर सिंथेटिक एप्रेचर राडार, मून मिनरलोजी मैपर (M-3) आदि कुल 11 अत्याधुनिक उपकरणों से लैस पहला ऐसा उपग्रह है जिसमें हाई रेजोल्यूशन रिमोट सेंसिंग के जरिए चंद्रमा की तस्वीरें देखी जा सकेंगी। यह चंद्रमा की सतह व वातावरण का संपूर्ण रासायनिक मानचित्रण करेगा तथा उसके मृदा, खनिज, बर्फ, ऊष्मा, मौसम आदि की जानकारियाँ उपलब्ध कराएगा। चंद्रयान-1 ने चन्द्रमा पर बर्फ के होने की जानकारी दी है। चंद्रयान पर नजर रखने के लिए बंगलुरु से 40 किमी. दूर ***ब्यालालू*** में इंडियन डीप स्पेस नेटवर्क सेंटर की स्थापना की गयी है। भारत के 'इसरो' व रूस के 'रॉस कॉस्मॉस' ने संयुक्त रूप से 16 अगस्त, 2009 को चंद्रयान-2 का भी डिजाइन तैयार कर लिया है। यह 2012 में प्रक्षेपित किया जाएगा तथा इसे लैंड रोवर उपकरण के मदद से चंद्रमा की सतह पर उतारा जाएगा।

उल्काश्म व उल्कापिंड

ये अंतरिक्ष में तीव्र गति से घूमते हुए अत्यन्त सूक्ष्म ब्रह्मांडीय कण हैं। धूल व गैस निर्मित ये पिंड जब वायुमंडल में प्रवेश करते हैं तो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण तेजी से पृथ्वी की ओर आते हैं और वायुमंडलीय घर्षण से चमकने लगते हैं। इन्हें 'टूटता हुआ तारा' (Shooting Star) कहा जाता है। प्राय: ये पृथ्वी पर पहुँचने से पूर्व ही जलकर राख हो जाते हैं, इन्हें 'उल्काश्म' (Meteors) कहते हैं। परंतु, कुछ पिंड वायुमंडल के घर्षण से पूर्णतः जल नहीं पाते और चट्टानों के रूप में पृथ्वी पर आ गिरते हैं जिन्हें 'उल्कापिंड' कहा जाता है।

पुच्छल तारे या धूमकेतु

ये आकाशीय धूल, बर्फ और हिमानी गैसों के पिंड हैं जो सूर्य से दूर ठंडे व अंधेरे क्षेत्र में रहते हैं। सूर्य के चारों ओर ये लंबी किन्तु अनियमित या असमकेन्द्रित (Eccentric) कक्षा में घूमते हैं। अपनी कक्षा में घूमते हुए कई वर्षों के पश्चात जब ये सूर्य के समीप से गुजरते हैं तो गर्म होकर इनसे गैसों की फुहार निकलती है जो एक लंबी चमकीली पूंछ के समान प्रतीत होती हैं। कभी-कभी ये पूंछ लाखों किमी. लंबी होती है। सामान्य अवस्था में पुच्छल तारा (कॉमेट) बिना पूंछ का होता है। पुच्छल तारा के शीर्ष को **'कोमा'** कहते हैं। **लांग पीरियड कॉमेट** 70 से 90 वर्षों के अंतराल पर दिखाई पड़ता है। **हेली पुच्छलतारा** भी इन्हीं में से एक है। यह 76 वर्षों के अंतराल के बाद दिखाई पड़ता है। अंतिम बार यह 1986 ई. में देखा गया था। खगोलशास्त्रियों के अनुसार सौरमंडल में लगभग 1 लाख धूमकेतु विचरण रहे हैं।

क्षुद्रग्रह या अवान्तर ग्रह

क्षुद्रग्रह (Asteroids) मंगल और वृहस्पति ग्रह के मध्य क्षेत्र में सूर्य की परिक्रमा करनेवाले छोटे से लेकर सैकड़ों किमी. आकार के पिंड हैं। इनकी अनुमानित संख्या 40,000 है। इनकी उत्पत्ति ग्रहों के विस्फोट के फलस्वरूप टूटे हुए खंडों से हुई है, यद्यपि इस संबंध में कुछ अन्य मत भी दिए गए है।